अभिधम्मत्थसङ्गह

रचयिता

आचार्य अनुरुद्ध महास्थविर

अनुवादक

भदन्त आनन्द कौसल्यायन



प्रकाशक

बुद्ध विहार, लखनऊ (उ० प्र०)

प्रकाशक
भिक्षु प्रज्ञानन्द
बुद्ध विहार, रिसालदार पार्क
लखनऊ

प्रथम संस्करण
मूल्य ३)

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

गौर्वार्ह

बर्मी महास्थविर

ऊ० वरसम्बोधि जी

की

पुण्य-स्मृति में

प्रकाशकीय

बुद्ध विहार, लखनऊ के प्रकाशनों के अन्तरगत प्रस्तुत "अभिधम्मत्थ सङ्गहो" को पाठकों के हाथों में देते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है। ज्ञान, धर्म, दर्शन एवं विज्ञान आदि विषयों से सम्बन्धित साहित्य अब हिन्दी में दुर्लभ नहीं है। परन्तु अभिधर्मार्थ संग्रह जैसे विशिष्ट ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद प्राप्य न होने की शिकायत इधर कई दशक से बौद्ध दर्शन के जिज्ञासुओं को रही है। आशा है वह इस ग्रन्थ के प्रकाशन से दूर हो जायगी।

इस ग्रन्थ के अनुवाद को प्रकाशित करने का श्रेय श्रीलंका के 'लखनऊ बुद्ध धर्म प्रचारक मण्डल' कोलोम्बो को तथा श्रीलंकी सरकार के सांस्कृतिक कार्यों के मंत्रालय के संचालकों को है। यदि इनके द्वारा आर्थिक सहायता दी जाकर हमें प्रेरित व प्रोत्साहित न किया गया होता तो बहुत सम्भव था कि हम यह सद्कार्य कदाचित सम्पन्न ही न कर पाते। स्वयं हिन्दीतर भाषा-भाषी होते हुए भी श्रीलंका की भारत प्रेमी जनता तथा शासन ने हिन्दी में प्रकाशन कार्य के प्रति आर्थिक सहायता दे कर जो रुचि दिखाई है उसके प्रति हम दोनों के अत्यन्त ऋणी हैं।

पूज्य भदन्त आनन्द कौसल्यायन के हम बहुत ही कृतज्ञ हैं जिन्होंने इतने परिश्रम से तैयार की गई अपनी इस कृति को प्रकाशित करने का हमें अवसर प्रदान किया है। प्रार्थना है कि उनकी लेखनी इसी प्रकार बुद्ध शासन की सेवा में लगी रहे।

बुद्ध विहार, लखनऊ के प्रकाशनों में सदा रुचि रखने वाले महाबोधि सभा के महामंत्री, श्री देवप्रिय वलिसिंह जी की दया-दृष्टि विहार तथा इसके प्रकाशन कार्यों के प्रति सदा जागरुक रही है। उनकी यह कृपा सदा बनी रहे।

१९-१०-६०
बुद्ध विहार, लखनऊ

भिक्षु ग० प्रज्ञानन्द

विषय-सूची

प्रस्तावना

आधुनिक समय में किसी भी विषय का प्रारम्भिक ज्ञान कराने के लिये ग्रन्थ लिखने की जो पद्धति है, यह स्वीकार करना पड़ेगा कि 'अभिधम्मत्थ सङ्गहो' ठीक उस पद्धति पर लिखी गई रचना नहीं ही है। किन्तु अपने विषय को एकदम हस्तामलक किये हुए कोई महान आचार्य यदि अपने लिये वा अपने अन्तेवासियों के प्रयोजनार्थ कुछ 'नोट' लिखें-लिखवायें और वे 'नोट' बहुत ही व्यवस्थित हों, हर दृष्टि से सम्पूर्ण हों—तो यह अभिधम्मत्थ सङ्गहो, कुछ कुछ वैसे ही 'नोटों' के समान है। इस ग्रन्थ के पठन-पाठन में और हृदयङ्गम करने में यही सब से बड़ी कठिनाई है।

त्रिपिटक के अन्तर्गत माने जाते हैं तीन पिटक—सुत्त-पिटक, विनय-पिटक तथा अभिधम्म-पिटक। और अभिधम्म पिटक के अन्तर्गत हैं सात प्रकरण—(१) धम्मसंगनी, (२) विभंग, (३) धातुकथा, (४) पुग्गलपञ्ञत्ति, (५) कथावत्थु, (६) यमक तथा (७) पट्ठान।

ऐसा लगता है कि प्राचीन काल में किसी भी महत्वपूर्ण रचना के साथ यदि कुछ अलौकिक उपाख्यान न जोड़ा जाय तब तक कदाचित् उस ग्रन्थ की उपादेयता को लोग हृदयङ्गम नहीं कर पाते थे। तीन पिटकों में से अभिधर्म-पिटक की रचना के मूल में भी सुन्दर देववाद का संयोग है।

माना जाता है कि बुद्ध परिनिर्वाण के तुरन्त बाद महास्थविर काश्यप की अध्यक्षता में राजगृह में जो संगीति हुई और उसके १०० वर्ष तथा २३६ वर्ष बाद वैशाली तथा पाटलिपुत्र में जो दूसरी दो संगीतियां हुईं—इन तीनों संगीतियों में तीनों पिटकों का संगायन हुआ।

महावंश और उसके बाद समन्तपासादिका में तीनों संगीतियों का वर्णन किया गया है।

काल की दृष्टि से विनय-पिटक के चुल्लवग्ग में जो प्रथम और द्वितीय संगीति का वर्णन है वह अधिक प्राचीन है और अधिक महत्वपूर्ण भी। चुल्ल-वग्ग के प्रथम संगीति के वर्णन में निम्नलिखित बातें हैं—

१. बुद्ध के प्रमुख शिष्य महाकाश्यप को पावा से कुसीनगर आते समय बुद्ध के परिनिर्वाण का समाचार मिलता है।

२. सुभद्र अन्य भिक्षुओं के साथ दुखी होने की बजाए कहता है—'अच्छा हुआ, महाश्रमण नहीं रहा। अब जो चाहेंगे करेंगे।'

३. महाकाश्यप धर्म-विनय के संगायन के लिये संगीति (सम्मेलन) कराते हैं। उसमें के पाँच सौ भिक्षुओं में एक जगह आनन्द के लिये रखी गई, यद्यपि वह अभी अर्हत् नहीं हुए थे।

४. यह संगीति राजगृह में होती है।

धर्म और विनय के साथ अभिधम्म-पिटक का भी पारायण इसी संगीति में हुआ, यह जो समन्त-पासादिका का कहना है, यह तो स्पष्ट रूप से अनैति-हासिक है।

महावस्तु में जो प्रथम संगीति का वर्णन है, उसमें भी महाकश्यप को ही प्रथम संगीति का पुरस्कर्ता माना गया है और संगीति का स्थान भी राजगृह तथा भिक्षुओं की संख्या भी पाँच सौ ही है।

हाँ, सर्वास्तिवादियों के विनय पिटक में भी प्रथम संगीति का वर्णन है। इसके अनुसार त्रिपिटक का रचना-क्रम इस प्रकार है—(१) धर्म, आनन्द द्वारा। (२) विनय, उपालि द्वारा (३) मातृका (= अभिधर्म) महाकाश्यप द्वारा।

द्वितीय संगीति के उल्लेखों में कहीं मातृका या (अभि-धर्म) का उल्लेख नहीं और चुल्लवग्ग में तो तृतीय संगीति का ही उल्लेख नहीं।

अभिधर्म पिटक का जो पौराणिक इतिहास है उसके अनुसार भगवान् बुद्ध ने सर्वप्रथम अभिधर्म का उपदेश उस समय किया था जब उन्होंने श्रावस्ती से नाति दूर 'गन्डम्ब' के नीचे दो चमत्कार दिखाये थे. . . . फिर दूसरी बार जब भगवान् बुद्ध त्रयोत्रिंश भवन पधारे तब वहां तीन महीने तक

निरन्तर अपनी माता को अभिधर्म का उपदेश देते रहे. . . . वहाँ से लौट कर उन्होंने सारिपुत्र को वह सब मातृकायें बताईं कि जिनका उपदेश भगवान बुद्ध ने अपनी माता के साथ साथ दूसरे देवताओं को भी दिया था . . . . इसके बाद महास्थविर ने उन्हीं मातृकाओं को विस्तृत रूप से 'धर्म-संगनी' से लेकर 'महा पट्ठान' तक अपने पांच सौ शिष्यों को उपदिष्ट किया।

इस वर्णन से लगता है कि त्रिपिटक के अन्य दोनों पिटकों से भी अभिधर्म पिटक की रचना अधिक ऊहा-पोह का विषय रहते हुए भी सम्भवतः उसका विकास इन मातृकाओं से ही हुआ है।

यह अभिधर्म पिटक वा इसके सातों प्रकरण भगवान् बुद्ध के समय के तो नहीं हैं यह तो इसलिये भी निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है क्योंकि सात प्रकरणों में से एक प्रकरण कथावत्थु के रचयिता तो अशोक-गुरु मोग्गलिपुत्त तिस्स ही हैं।[१]

सर्वास्तिवादी परम्परा के अनुसार तो अभिधर्म पिटक के रचयिताओं के नाम इस प्रकार हैं—ज्ञान प्रस्थान के आर्य कात्यायनी पुत्र, प्रकरणपाद के स्थविर वसुमित्र, विज्ञानकाय के स्थविर देवशर्मा, धर्मस्कन्ध के आर्य शारिपुत्र, प्रज्ञप्तिशास्त्र के आर्य मौद्गल्यायन, धातु काय के पूरण, संगीति पर्याय के महाकौष्ठिलः।[२]

अभिधर्म को बौद्ध दर्शन का पर्याय मानने की परिपाटी पड़ गई है। किन्तु हमें अभिधर्म के विषय में यह समझे रहना चाहिये कि यह अभि-धर्म भले हो, किन्तु धर्म अवश्य है और धर्म के सभी अंगों का पूरा पूरा ब्योरा है।

हम समझते हैं कि बौद्ध भिक्षुओं के नियम उपनियमों को छोड़कर जो 'विनय' कहलाते हैं और बौद्धधर्म के इतिहास-पक्ष को छोड़कर जो बहुत कुछ सुत्तन्त के अन्तर्गत आ जाता है, शेष जो कुछ भी बुद्ध-धर्म का बचता है

---

१. देखो कथावत्थु प्रकरण की निदान-कथा।

२. (स्फूटार्था अभिधर्मकोश व्याख्या पृष्ठ ११) पर दी गई इस सूचना के लिये मैं डा० शान्ति भिक्षु शास्त्री का कृतज्ञ हूँ।

उस सभी को जो शास्त्र अपने नपे-तुले अत्यन्त परिमार्जित शब्द-संग्रह के भीतर समेट लेता है, उसका नाम 'अभिधर्म' है।

'सुत्तन्त-पिटक' की अपेक्षा 'विनय-पिटक' का पठन-पाठन कम होता है और विनय-पिटक की भी अपेक्षा अभिधम्म-पिटक का तो और कम।

किन्तु जो एक ही ग्रन्थ या तो अभिधम्म-पिटक के अध्ययन के अभाव की कमी को आंशिक तौर पर पूरा कर देता है या अभिधर्म-पिटक के सातों प्रकरणों के अध्ययन के मार्ग को और भी प्रशस्त कर देता है, वह एक ही ग्रन्थ 'अभिधम्मत्थ सङ्गहो' है। बर्मा में तो धम्मपदट्ठकथा तथा जातकट्ठकथा आदि के माध्यम से जहाँ पालि में कुछ भी प्रगति हुई, तो फिर 'अभिधम्मत्थ-सङ्गहो' ही प्रत्येक विद्यार्थी की पाठ्य-पुस्तक बनती है। इसमें विचारों की सूक्ष्मता है, किन्तु भाषा की दुरूहता नहीं।

पुस्तक में कुल नौ परिच्छेद हैं। सामान्य क्रम प्रथम परिच्छेद, द्वितीय-परिच्छेद और तब तृतीय परिच्छेद....ही पढ़ने पढ़ाने का है। इस पुस्तक की कठिनाई यही है कि प्रत्येक परिच्छेद का विषय दूसरे परिच्छेदों में वर्णित विषय के साथ कुछ ऐसा ताना-बाना सा बुना हुआ है कि प्रत्येक परिच्छेद को पूर्णतः हृदयङ्गम करने के लिये जैसे समस्त पुस्तक का ही पूर्णतः हृदयङ्गम करना अनिवार्य हो जाता है।

तो भी इन पंक्तियों के विनम्र लेखक की दृष्टि से यदि 'अभिधम्मत्थ सङ्गहो' के पाँचवें और छठे परिच्छेद को पहले पढ़ लिया जाय और तदनन्तर आरम्भ के चारों परिच्छेदों को पढ़ा जाय तो कदाचित् अभिधम्म की दुरूह गलियों में थोड़ी सुगमता से गमनागमन हो सके।

अभिधम्मत्थ-सङ्गहो के पहले छहों परिच्छेदों में अभिधम्मत्थ-सङ्गहो के चारों परमार्थ—चित्त, चैतसिक, रूप तथा निर्वाण—समाप्त हो जाते हैं। शेष तीनों को अभिधर्म का व्यवहार-पक्ष कह सकते हैं।

'अभिधम्मत्थ सङ्गहो' में जिन मान्यताओं को स्थान दिया गया, उनमें से कुछ का संक्षेप इस प्रकार किया जा सकता है।

१. बौद्धधर्म में चार ही 'परमार्थ' गिने गये हैं। 'व्यवहार-सत्य' से

'परमार्थ' सत्य भिन्न होता है। वेदान्त के नाम पर जो जगत को 'व्यवहार-सत्य' और 'ब्रह्म' को 'परमार्थ-सत्य' प्रचारित किया जाता है, यह 'व्यवहार-सत्य' तथा 'परमार्थ-सत्य' का वर्गीकरण भारतीय चिन्तन-परम्परा को बौद्धधर्म की ही देन है। बौद्धधर्म के अनुसार चार ही परमार्थ-सत्य हैं—(१) चित्त, (२) चैतसिक, (३) रूप तथा निर्वाण। सौगत-समय के अनुसार 'आत्मा, तथा 'परमात्मा' न 'व्यवहार-सत्य' हैं और न 'परमार्थ-सत्य'।

२. चित्त, विज्ञान, मन ये शब्द ही नाना हैं अर्थ से नाना नहीं। किन्तु प्रवृत्त-चित्त अनेक चैतसिकों में से कम या बेश कुछ चैतसिकों के ही समूह का नाम है। यूँ 'चित्त' कहते उसे ही हैं जिसमें चैतसिक रहते हैं। किन्तु क्योंकि बिना चित्त के कहीं चैतसिक देखने में नहीं आते और बिना चैतसिकों के कहीं प्रवृत्त-चित्त देखने में नहीं आता, इसलिये चित्त और चैतसिकों के बीच में कहीं भी कोई पार्थक्य की रेखा खींचना सहज नहीं। चित्त 'वस्तु' स्वरूप नहीं ही है, वह अनेक मानसिक क्रियाओं-प्रक्रियाओं का बोध कराने वाला एक शब्द है। चित्त की कुछ क्रियायें-प्रक्रियायें ऐसी हैं जो ऐसे चित्तों में ही उत्पन्न हो होकर निरुद्ध होती हैं जो चित्त काम-लोक में ही रमण करते हैं। ऐसे चित्त कामावचर (-लोक) के चित्त कहलाते हैं।

इसी प्रकार रूपावचर, अरूपावचर तथा लोकोत्तर चित्त भी होते हैं।

ऐसे कुल चित्तों की गिनती ८९ और एक दूसरे क्रम से १२१ तक की गई है।

चैतसिक और चित्त की स्वतन्त्र परिभाषायें करना कितना भी कठिन हो, इतना तो कहा ही जा सकता है कि जो चित्त में रहते हैं वे 'चैतसिक' और 'चैतसिकों' का जिस के साथ उत्पाद और निरोध होता है वह चित्त।

जिस प्रकार चित्त के सम्भवरूपों का विश्लेषण कर उनकी गिनती ८९ या १२१ पर समाप्त की गई है; उसी प्रकार चैतसिकों का भी पृथक पृथक

विचार कर उन्हें ५२ माना गया है। उनमें सात चैतसिक तो ऐसे हैं, जो सभी चित्तों में विद्यमान रहते हैं, कुछ ऐसे ही हैं जो कुशल (=शुभ) चित्तों में ही रहते हैं, कुछ ऐसे ही हैं जो अकुशल (=अशुभ) चित्तों में ही रहते हैं तथा शेष ऐसे हैं जो अपने अपने नियम के अनुसार कहीं रहते हैं, कहीं नहीं रहते हैं।

पहले तथा दूसरे परिच्छेद में चित्त के नानास्वरूपों और चैतसिकों की गिनती दी गई है। तीसरे परिच्छेद में दिखाया गया है कि किस किस चित्त में कौन कौन से चैतसिक रहते हैं वा कौन कौन से चैतसिक किस किस चित्त के निर्माण में अङ्ग-अङ्गी भाव से समन्वित रहते हैं।

यहाँ अङ्ग-अङ्गी शब्द का प्रयोग भाषा के सौकार्य के लिये ही किया गया है, अन्यथा बौद्ध-दर्शन में अपने अङ्गों से पृथक किसी अङ्गी की मान्यता के लिये कोई स्थान नहीं है।

चौथे परिच्छेद में चित्त का नदी-स्रोत रूप स्पष्ट किया गया है। चित्त **एक** तो नहीं ही है, वह केवल **एक** भासता है। जो यह एक भासने वाला चित्त है वह भी निरन्तर परिवर्तनशील है। कैसे? उत्पाद, स्थिति, भंग के हिसाब से तीन क्षण इकट्ठे मिलकर एक 'चित्त-क्षण' कहलाता है। १७ 'चित्त-क्षण' एक 'रूप धर्म' की आयु माने गये हैं।

चाहे एक चित्त-क्षण व्यतीत हुआ हो, चाहे अनेक चित्त-क्षण व्यतीत हुए हों, किन्तु जो स्थिति-प्राप्त पांच आरम्मण (आलम्बन) (रूप-शब्द, गन्ध, रस, स्पृष्टव्य) ही पांच द्वारों (चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा और काय) के गोचर होते हैं। इसलिये यदि ऐसा रूप... चक्षु के गोचर होता है जिसकी आयु अभी तक एक चित्त-क्षण ही हुई हो तो भवङ्ग-चलन तथा भवङ्ग उपच्छेद के रूप में भवङ्ग का दो बार चलन हो जाने पर भवङ्ग-स्रोत चालित होकर उसी रूपारम्भण का आवर्जन (=सम्मुखीकरण) करते हुए पञ्चद्वारावर्जन चित्त उत्पन्न होकर निरोध को प्राप्त होता है। इसके बाद उसी रूप को देखते रहने से चक्षु-विज्ञान, सम्पटिच्छन (सम्यक् ग्रहण) करने से सम्पटिच्छन-चित्त, सन्तीरण (=सम्यक् विचार) करने से संतीरण-चित्त, वोट्ठपन (सम्यक् स्थापन) करने से वोट्ठपन-चित्त

यथाक्रम उत्पन्न होकर निरोध को प्राप्त होता है। इसके बाद उन्नतीस (२९) कामावचर जवन चित्तों में जो कोई भी चित्त प्रत्यय लब्ध होता है, वह 'प्रायः' सात बार वेग से गमन (=जवन) करता है। मूर्छा आदि के समय पर पाँच या छः 'जवन' करता है। इसीलिये 'प्रायः' कहा गया है। जवन का अनुबन्ध (अनुगमन) करने वाले दो तदारम्मण विपाक (चित्त) यथा योग्य प्रवर्तित होते हैं। इसके बाद भवङ्ग-पात।

भवङ्ग चित्त रूपी नदी का वह स्रोत है, जिसमें कोई लहर नहीं उठती अथवा जिसमें ही सभी चित्त-वीथियाँ उठ उठ कर विलीन होती रहती हैं।

चित्त की वीथि-प्रवृत्ति को सरलता से समझाने के लिये यह उपमा दी जाती है। एक आदमी फलदार आम्रवृक्ष के नीचे सिर ढक कर सो रहा है। पास गिरे आम्र-फल का शब्द सुनकर जागता है। सिर पर से कपड़ा हटाता है। आँख खोलता है। देखता है। उसे लेता है। मलकर, सूंघकर, पका जान खाता है। मुंह में पड़े रस को लार सहित निगल कर फिर उसी तरह सो जाता है। आदमी के निद्रित रहने के समय के समान है भवङ्ग-समय। फल के गिरने के समय जैसा है आरम्मण का 'प्रसाद' टकराने का समय। उस (आम्रफल) के गिरने के शब्द से जाग उठने का समय है आवर्जन-समय। आँख खोलकर देखने जैसा है चक्षु-विज्ञान के प्रवर्तित होने का समय। ग्रहण करने जैसा है सम्पटिच्छन-काल। मलने के समय जैसा है सन्तीरण-काल। सूंघने जैसा है वोट्ठपन-काल। परिभोग (=खाने) जैसा है जवन-काल। मुख में पड़े रस को लार के साथ निगलने जैसा है तदारम्मण-काल। दुबारा सो जाने जैसा है फिर भवङ्ग-पात (पृ० ४५)।

प्रश्न पैदा होता है चित्त-चैतसिकों की इन सूक्ष्म प्रक्रियाओं का ज्ञान कैसे प्राप्त किया गया? यही उत्तर है कि यह मानस-साक्षात्कार मात्र है। जैसे अपने हाथों को ही मलमल कर आदमी अपने हाथ साफ कर लेता है, उसी प्रकार साधक अपने चित्त को ही साधना द्वारा अधिक एकाग्र, अधिक स्वच्छ, अधिक सूक्ष्म करके उस निर्मल प्रज्ञा को प्राप्त कर लेता है जिसकी प्राप्ति होने पर यह सारा ज्ञान उसे दर्पण में आकृति की भांति स्पष्ट भासने लगता है।

पञ्चम परिच्छेद में चार भूमियों का उल्लेख है, चार ही प्रकार की प्रतिसन्धि का उल्लेख है, चार ही प्रकार के कर्मों का उल्लेख है और इस बात का भी उल्लेख है कि मरण भी चार ही प्रकार से होता है।

बात इतनी ही है कि प्रति-सन्धि (=जन्म), भवङ्ग (=चित्त-सन्तति), चित्त-वीथि (=चित्त सन्तति में नाना प्रकार की प्रक्रिया) और च्युति (=मरण) तथा अगले जन्म में फिर प्रति-सन्धि और भवङ्ग—इसी क्रम से चित्त-सन्तति का प्रवर्तन होता है। (पृ० ६७)

षष्ठ-परिच्छेद में 'रूप' की चर्चा है। यह परिच्छेद भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितने पहले दो परिच्छेद जिनमें नाम (mind) का विचार किया गया है, क्योंकि इसमें रूप (matter) का बड़ा ही गम्भीर विश्लेषण है। सर्वप्रथम रूपों का वर्णन आता है (=उद्देस)। तदनन्तर रूपों का ११ प्रकार का वर्गी-करण (=विभाग), (३) आगे रूपों की चार प्रकार से उत्पत्ति (=रूप-समुट्ठान) और तब रूपों का समूही-करण (=कलाप) और अन्त में रूपों का प्रवृत्ति-क्रम।

सामान्य चर्चा का विषय है कि क्या 'चित्त' मूल है और 'रूप' उसका 'फल' है अथवा 'रूप' मूल है और 'चित्त' उसका 'फल' है? अभिधर्म के अनुसार यह प्रश्न ही ठीक नहीं है क्योंकि न अकेला 'चित्त' ही 'रूप' का 'मूल' है बल्कि उसके साथ 'कर्म', 'ऋतु' तथा 'आहार' का भी संयोग होने से ही 'रूप' का 'समुत्थान' होता है; उसी प्रकार यह भी कहना अयथार्थ ही है कि 'चित्त' के 'समुत्थान' को भी 'रूप' से कुछ लेना-देना नहीं, क्योंकि बिना चक्षु-आदि के चक्षु-विज्ञान आदि की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती।

अभिधर्म के अनुसार इन्द्रिय-विशेष उसका विषय तथा चित्त—जहाँ इन तीनों का समाहार होता है वहीं तज्जन्य 'विज्ञान' की उत्पत्ति होती है।

जिस प्रकार प्रतिसन्धि (=जन्म) का विचार किया गया है उसी प्रकार च्युति (=मरण) का भी विचार किया गया है। वास्तव में यहाँ जो प्रतिसन्धि-चित्त है वही तो अन्यत्र का च्युति-चित्त भी है।

चित्त, चैतसिकों तथा रूप की चर्चा हो चुकने के अनन्तर अभिधर्म के चार परमार्थों में एक ही शेष रह जाता है और वह है 'निर्वाण'।

'वान' शब्द 'तृष्णा' का पर्याय है। उसी के जड़मूल से उच्छेद कर सकने का नाम ही 'निर्वाण' है। 'निर्वाण' को 'अच्युत-पद' कहा गया है, 'असंस्कृत' कहा गया है, 'लोकोत्तर' कहा गया है। सही बात यह है कि 'निर्वाण' की एक ही 'परिभाषा' है और वह यही कि उसकी कोई 'परिभाषा' हो नहीं सकती।

यूं यह स्वभाव से एक ही प्रकार का है, किन्तु 'कारण' और 'आकार' का ख्याल कर इसके भी दो दो तथा तीन तीन प्रकारों की चर्चा की ही गई है।

इस तरह से 'अभिधम्मत्थ सङ्गहो' के आरम्भ में ही जैसे यह कहकर कि 'अभिधर्म में जितने अभिधर्मार्थ कहे गये हैं वे सब परमार्थ रूप से चार ही पदार्थ हैं—'चित्त, चैतसिक, रूप तथा निर्वाण', अभिधम्मत्थ-सङ्गहो का अर्थ किया गया है उसी प्रकार इस षष्ठ परिच्छेद के अन्त में यह कहकर कि 'इस प्रकार तथागत चित्त, चैतसिक, रूप तथा निर्वाण इन चार परमार्थों को प्रकाशित करते हैं' अभिधर्म के विषयों की 'इति' कर दी गई प्रतीत होती है।

सप्तम परिच्छेद तो एक प्रकार से अभिधर्म के ही नहीं बल्कि समस्त धर्म के पारिभाषिक शब्दों की अनुक्रमणिका सी है। उस संग्रह से आप जान सकते हैं कि आसव कौन कौन से हैं और कितने हैं, इसी प्रकार 'ओघ', 'योग', 'ग्रन्थ' तथा 'उपादान' भी। उसके अनुसार 'नीवरण' छः हैं तो 'संयोजन' दस हैं। हेतुओं, ध्यान के अंगों तथा आर्य अष्टंगिक मार्ग के अंगों की भी विस्तृत चर्चा इसी परिच्छेद में मिलेगी। ३७ बोधि-पक्षिय धर्मों का इसमें पूरा समावेश हो गया है। इस प्रकार देखा जाय तो यह परिच्छेद अभिधर्म-शब्दावलि का एक छोटा किन्तु प्रामाणिक कोष सा ही है।

आठवां परिच्छेद फिर बड़ा ही महत्वपूर्ण परिच्छेद है, क्योंकि इसमें संस्कृत-धर्मों की उत्पत्ति न केवल प्रतीत्यसमुत्पाद के क्रम से बल्कि पट्ठान

के क्रम से भी समझाई गई है। कहना न होगा कि यह बौद्ध-चिन्तन का बहुत ही सूक्ष्म-पक्ष है।

अन्तिम नवम परिच्छेद बौद्ध धर्म की योग-प्रणालि के अनुसार साधना करने के इच्छुक 'योगावचरों' के काम का है। बौद्ध योग-पद्धति के अनुसार साधना के दो क्रम स्वीकार किये गये हैं—(१) समथ (=समाधि), (२) विपस्सना (=प्रज्ञा)।

इस परिच्छेद में 'समथ' तथा 'विपस्सना' दोनों की ही वृद्धि का अभ्यास करने के आकांक्षियों के लिए व्यवहारिक जानकारी है। कहा ही है 'जो कोई इस (बुद्ध-) शासन में धर्माचरण के रस के स्वाद की कामना करता हो उसे इस 'शमथ-कर्मस्थान' तथा 'विपश्यना-कर्म-स्थान' दोनों का ही अभ्यास करना चाहिए' (पृ० ११२)

जो ग्रन्थ इतना छोटा होने पर भी स्थविरवादी बौद्ध देशों में इतना अधिक आदृत है, जिसका इतना अधिक स्वाध्याय किया जाता है, जो इतना कण्ठस्थ किया जाता है और जो इतने गम्भीर मनन का विषय है उसके रचयिता महास्थविर अनुरुद्ध थे, जिनका समय ११ वीं शताब्दी माना जाता है।

उनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने सिंहल, बर्मा, स्याम तथा हिन्द-चीन में रह कर धर्म का अध्ययन किया था। बर्मी परम्परा के अनुसार अनुरुद्ध महास्थविर सिंहल देशीय थे। उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना वट्ट-ग्रामणी-नरेश की महिषी सोमा देवी द्वारा बनवाये गये पोलन्नरुव-स्थित विहार में रहते समय ही की थी।

इस ग्रन्थ का महत्व इस बात से भी स्पष्ट है कि बर्मा और सिंहल-द्वीप में इस ग्रन्थ के अध्ययन को सुगम बनाने के लिए इस पर पालि भाषा में ही नहीं बर्मी तथा सिंहल में भी दर्जनों व्याख्या-ग्रन्थ विद्यमान हैं।

अंग्रेजी में बर्मी पण्डित श्री श्वे० ज़ान० आङ्ग बी० ए० का अनुवाद Compendium of Philosophy और सिंहल-विद्वान डा० C. L. A. de Silva का A Treatise of Buddhist Philsophy दो उपादेय ग्रन्थ

हैं। किन्तु दोनों से अधिक सुबोध और सरल पद्धति से लिखा गया भाई जगदीश काश्यप का The Abhidhamm Philosophy ही आज बौद्ध धर्म के अंग्रेजी-जानकार विद्यार्थियों के लिए सहज-प्राप्य है।

विद्वद्वर धर्मानन्द कोसम्बो ने पालि में ही 'नवनीत-टीका' नाम से अभिधम्मत्थ संगहो की एक टोका लिख कर इस ग्रन्थ के अनेक दुर्बोध स्थलों को बहुत सुगम कर दिया।

इतना सब रहते हुए भी यह बात न केवल खटकती थी, बल्कि हृदय को चुभती भी थी कि 'अभिधम्मत्थ संगहो' को हिन्दी माध्यम से समझने-समझाने के लिए एक भी सहायक-ग्रन्थ प्राप्य नहीं है। वर्षों पहले बर्मी महास्थविर वरसम्बोधि जी ने 'अभिधम्मत्थ संगहो' के सम्बन्ध में एक हिन्दी ग्रन्थ तैयार किया था। उसके आरम्भिक दो तीन परिच्छेद प्रथम-भाग के रूप में प्रकाशित भी हुए थे। उनका यह प्रयास हर दृष्टि से सराहनीय होने पर भी उनका हिन्दी का अभ्यास मर्यादित होने के कारण उनका वह अनुवाद और उनकी वह व्याख्या मूल से भी कुछ अधिक दुर्बोध हो गई थी।

शेष भाग अप्रकाशित ही रहा।

मेरा यह विनम्र-प्रयास एक प्रकार से कोसम्बी जी की पालि टीका का हिन्दीकरण मात्र ही है। मूल अभिधम्मत्थ संगहो में एक ही बात पहले गद्य में कही गई है फिर एक प्रकार से उसी को संक्षिप्त रूप में एक गाथा में भी बांध दिया गया है। पहले मेरा विचार था मूल पालि और उसकी हिन्दी टीका को साथ साथ देने का। बाद में लगा कि ऐसा करने से 'पुनरुक्ति दोष' की मात्रा अत्यधिक हो जायगी। इसलिये मैंने सामान्यतया गद्यांश का तो अनुवाद भर दे दिया है, साथ ही उस अनुवाद को सुगम बनाने के लिए अतिरिक्त जानकारी भी वहीं दे दी है, किन्तु जहाँ जहाँ गाथायें हैं उन सभी गाथाओं का मूल भी दे देना उपयोगी जंचा है। गाथाओं का जहां जहां अर्थ दिया गया है, वहां प्रायः सभी जगह अपनी ओर से कुछ शब्दों को जोड़ कर गाथाओं के अर्थ को सुगम बनाने का प्रयास करने की अनिवार्य

आवश्यकता अनुभव होती रही है। इस सारे प्रयास में जहाँ मैंने सहायता तो अनेक ग्रन्थों से ली है, किन्तु कोसम्बी जी की नवनीत-टीका ही मेरी मुख्य मार्ग-प्रदर्शिका सिद्ध हुई है।

पुस्तक की पाण्डु-लिपि को प्रेस में देने का समय आया तो मैं कार्य-वश थाई-लैण्ड और वहां से जापान चला गया था। इस समय भी मेरे सिंहल में ही रहने के बावजूद जो यह 'अभिधम्मत्थ-सङ्गहो' हिन्दी पाठकों के हाथों तक पहुंच सक रहा है, इसके लिये मैं अपने अनुज, महाबोधि सभा के भिक्षु प्रज्ञानन्द बुद्धविहार लखनऊ का ही कृतज्ञ हूँ। उनके धार्मिक उत्साह के बिना कदाचित् यह अप्रकाशित ही रहती।

अपने सम्मेलन मुद्रणालय का तो मैं चिर ऋणी हूँ ही।

विद्यालंकार विश्वविद्यालय
कैलानिया
१०-८-६०

आनन्द कौसल्यायन

अभिधम्मत्थसङ्गहो

प्रथम परिच्छेद

चित्त संग्रह विभाग

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

सम्मासम्बुद्धमतुलं ससद्धम्मगणुत्तमं ।
अभिवादिय भासिस्सं अभिधम्मत्थसङ्गहं ॥

[सद्धर्म तथा सङ्घ (= गण) सहित अतुल सम्यक् सम्बुद्ध का अभिवादन कर **अभिधम्मत्थ सङ्गह** (= अभिधर्मार्थ संग्रह) का भाषण (= लेखन) करूंगा।]

तत्थ वुत्ताभिधम्मत्था चतुधा परमत्थतो ।
चित्तं चेतसिकं रूपं निब्बानमिति सब्बथा ॥

[**अभिधर्म** में जितने **अभिधर्मार्थ** कहे गये हैं वे सब परमार्थ रूप से चार ही पदार्थ हैं—**चित्त, चेतसिक, रूप** तथा **निब्बान**।]

२. तत्थ चित्तं ताव चतुब्बिधं होति, कामावचरं, रूपावचरं, अरूपावचरं, लोकुत्तरञ्चेति ।

[चित्त की चार अवस्थायें होती हैं—(१) **कामावचर** (जिस चित्त में कामनाओं का प्राधान्य रहता है), (२) **रूपावचर** (योगाभ्यासी के चित्त के लिये 'रूपावचर' शब्द रूढ़ है), (३) **अरूपावचर** (जिन **आकाशानञ्चायतन**

आदि आयतनों में रूप का सर्वथा अभाव हो जाता है, उनसे सम्प्रयुक्त चित्त **अरूपावचर चित्त** कहलाता है), (४) **लोकुत्तर**, चार **मार्ग-चित्त (स्रोतापत्ति, सकृदागामी, अनागामी** तथा **अर्हत**) और चार फल-**चित्त (स्रोतापत्ति-फल-प्राप्त-चित्त, सकृदागामी-फल-प्राप्त-चित्त, अनागामी-फल-प्राप्त-चित्त तथा अर्हत-फल-प्राप्त-चित्त**) आठ चित्त **लोकुत्तर-चित्त** कहलाते हैं।]

अकुसल चित्तानि

३. तत्थ कतमं कामावचरं? सोमनस्ससहगतं दिट्ठिगत-सम्पयुत्तं असङ्खारिकमेकं, ससङ्खारिकमेकं; सोमनस्ससहगतं दिट्ठिगतविप्पयुत्तं असङ्खारिकमेकं, ससङ्खारिकमेकं; उपेक्खा-सहगतं दिट्ठिगतसम्पयुत्तं असङ्खारिकमेकं, ससङ्खारिकमेकं; उपेक्खासहगतं दिट्ठिगतविप्पयुत्तं असङ्खारिकमेकं, ससङ्खारिक-मेकं ति' इमानि अट्ठ पि लोभसहगतचित्तानि नाम।

कामावचर-चित्त कितने हैं?—

१. सोमनस्ससहगतं दिट्ठिगतसम्पयुत्तं असङ्खारिकं

[जब किसी का यह 'मत' हो कि कामभोगों के भोगने में कोई दोष नहीं है, अथवा दृष्ट-मङ्गल या श्रुत-मङ्गल आदि बातों में 'सार' देखता हो और ऐसी 'दृष्टि' होने के कारण 'आनन्दित' मन से 'काम' भोगता हो वा अन्य वैसे कर्म करता हो तथा ऐसा करने में किसी दूसरे की प्रेरणा कारण न हो, तो उस प्रकार के आदमी का वैसा चित्त **सोमनस्ससहगत दिट्ठिगतसम्पयुत्त असङ्खारिक** चित्त कहलाता है]

२. सोमनस्ससहगतं दिट्ठिगतसम्पयुत्तं ससङ्खारिकं

[जब किसी का यह मत हो कि.....करता हो तथा ऐसा करने में किसी दूसरे की प्रेरणा कारण हो तो उस प्रकार के आदमी का वैसा चित्त **सोमनस्ससहगत दिट्ठिगतसम्पयुत्त ससङ्खारिक चित्त** कहलाता है।]

३. सोमनस्ससहगतं दिट्ठिगतविप्पयुत्तं असङ्खारिकं

[जब 'मत' विशेष वा दृष्टि-विशेष के कारण नहीं, बल्कि यूं ही आनन्दित मन से 'काम' भोगता हो वा दूसरों के धन का हरण करता हो और ऐसा करने में किसी दूसरे की प्रेरणा कारण न हो तो उस प्रकार के आदमी का वैसा चित्त **सोमनस्ससहगत दिट्ठिगतविप्पयुत्त असङ्खारिक चित्त** कहलाता है।]

४. सोमनस्ससहगतं दिट्ठिगतविप्पयुत्तं ससङ्खारिकं

[जब 'मत' विशेष वा दृष्टि-विशेष के कारण नहीं . . . और ऐसा करने में किसी दूसरे की प्रेरणा कारण हो तो इस प्रकार के आदमी का वैसा चित्त **सोमनस्ससहगत दिट्ठिगतविप्पयुत्त असङ्खारिक चित्त** कहलाता है।]

५. उपेक्खासहगतं दिट्ठिगतसम्पयुत्तं असङ्खारिकं

[जब मत-विशेष वा दृष्टि-विशेष के कारण, किन्तु आनन्द-रहित (= उपेक्षायुक्त) मन से 'काम' भोगता है वा दूसरों के धन का हरण आदि करता है और ऐसा करने में किसी दूसरे की प्रेरणा कारण नहीं होती तो इस प्रकार के आदमी का वैसा चित्त **उपेक्खासहगत दिट्ठिगतसम्पयुत्त असङ्खारिक चित्त** कहलाता है।]

६. उपेक्खासहगतं दिट्ठिगतसम्पयुत्तं ससङ्खारिकं

[जब मत-विशेष वा दृष्टि-विशेष के कारण, किन्तु आनन्द-रहित (= उपेक्षायुक्त) मन से 'काम' भोगता है वा दूसरों के धन का हरण आदि करता है और ऐसा करने में किसी दूसरे की 'प्रेरणा' कारण होती है तो इस प्रकार के आदमी का वैसा चित्त **उपेक्खासहगत दिट्ठिगतसम्पयुत्त ससङ्खारिक चित्त** कहलाता है।]

७. उपेक्खासहगतं दिट्ठिगतविप्पयुत्तं असङ्खारिकं

[जब मत-विशेष वा दृष्टि-विशेष के कारण नहीं, बल्कि यूं ही आनन्द-

रहित (= उपेक्षा युक्त) मन से 'काम' भोगता है वा दूसरों के धन का हरण आदि करता है और ऐसा करने में किसी दूसरे की प्रेरणा कारण नहीं होती तो ऐसा चित्त **उपेक्खासहगत दिट्ठिगतविप्पयुत्त असङ्खारिक चित्त** कहलाता है।]

८. उपेक्खासहगतं दिट्ठिगतविप्पयुत्तं ससङ्खारिकं

[जब मत-विशेष वा दृष्टि-विशेष के कारण नहीं. . .करता है और ऐसा करने में किसी दूसरे की प्रेरणा कारण होती है तो ऐसा चित्त **उपेक्खा-सहगत दिट्ठिगतविप्पयुत्त ससङ्खारिक चित्त** कहलाता है।]

ये आठों लोभ-युक्त चित्त हैं।

४. दोमनस्ससहगतं पटिघसम्पयुत्तं असङ्खारिकमेकं, ससङ्खारिकमेकं ति इमानि द्वेपि पटिघचित्तानि नाम।

(१) **दौर्मनस्य (=खेद) सहित द्वेष (=पटिघ) युक्त** ऐसा चित्त **जिसकी** उत्पत्ति में किसी दूसरे की प्रेरणा कारण न हो।

(२) **दौर्मनस्यसहित द्वेष (=पटिघ) युक्त** ऐसा चित्त जिसकी उत्पत्ति में किसी दूसरे की प्रेरणा कारण हो।

ये दोनों द्वेष (=पटिघ) चित्त हैं।

५. उपेक्खासहगतं विचिकिच्छासम्पयुत्तमेकं

[उपेक्षा-सहित विचिकित्सा-युक्त चित्त]

६. उपेक्खासहगतं उद्धच्चसम्पयुत्तमेकं

[उपेक्षा-सहित औद्धत्य-युक्त चित्त]

प्रश्न पैदा होता है कि इन दोनों चित्तों के प्रसंग में भी किसी 'दूसरे की प्रेरणा से' और जिसमें किसी 'दूसरे की प्रेरणा न हो' ऐसे दो भेद क्यों नहीं किये गये ? उत्तर है कि **संदिग्ध-चित्त** वा **भ्रमित-चित्त** कोई कार्य्य नहीं कर

सकता, इसीलिए किसी 'दूसरे की प्रेरणा से' और जिसमें किसी 'दूसरे की प्रेरणा न हो' ऐसे दो भेद नहीं किये गये।

इमानि द्वे पि मोमूहचित्तानि नाम।

[ये दोनों मूढ़ता-युक्त चित्त हैं।]

इच्चेवं सब्बथा पि द्वादसाकुसलचित्तानि समत्तानि

[इस प्रकार ये सब बारह ८ + २ + २ = १२ अकुशल चित्त समाप्त हुए।]

अट्ठधा लोभमूलानि दोसमूलानि च द्विधा।
मोमूहमूलानि च द्वेति द्वादसाकुसला सियुं॥

[**लोभ-मूलक** ८ चित्त, **द्वेष-मूलक** दो चित्त, **मूढ़ता-मूलक** दो चित्त—इस प्रकार सब बारह चित्त हुए।]

अहेतुकचित्तानि

७. उपेक्खासहगतं चक्खुविञ्ञाणं
उपेक्खासहगतं सोतविञ्ञाणं
उपेक्खासहगतं घानविञ्ञाणं
उपेक्खासहगतं जिह्वाविञ्ञाणं
दुक्खसहगतं कायविञ्ञाणं
उपेक्खासहगतं सम्पटिच्छनचित्तं
उपेक्खासहगतं सन्तीरणचित्तं च

इमानि सत्त पि अकुसल-विपाक चित्तानि नाम।

लोभ, द्वेष, मोह तथा **अलोभ,** (=संतोष), **अद्वेष** (=मैत्री) और **अमोह** (=ज्ञान) ये छः हेतु हैं। पहले तीन **अकुशल-हेतु** हैं और वाद के

तीन **कुशल-हेतु**। जिस प्रकार जड़ पेड़ को दृढ़ बनाती है, उसी प्रकार ये **छः** हेतु चित्त को दृढ़तर बनाते हैं।

कुछ चित्तों का **कुशल** (= अच्छा) **विपाक** (= फल) होता है, कुछ का **अकुशल** (= बुरा) **विपाक** (= फल) होता है।

उपेक्षा-युक्त चक्षु-विज्ञान का चाहे **कुशल विपाक** हो, चाहे **अकुशल विपाक** हो, वह **अहेतुक** ही होता है। यहाँ सात **अकुशल-विपाक अहेतुक चित्त** दिये गये हैं—

(१) **उपेक्षा-सहगत चक्षुविज्ञान**
(२) **उपेक्षा-सहगत सोतविज्ञान**
(३) **उपेक्षा-सहगत घ्राणविज्ञान**
(४) **उपेक्षा-सहगत जिह्वाविज्ञान**
(५) **दुक्ख-सहगत कायविज्ञान**

[**दुक्ख-सहगत काय-विज्ञान अकुशल विपाक** ही होता है। सभी अकुशल-विपाक अकुशल-कर्म-विपाक होने से अहेतुक भी होते हैं।]

(६) **उपेक्खा-सहगत सम्पटिच्छन चित्त**
(७) **उपेक्खा-सहगत-संतीरण चित्त**

[जब कोई भी **विषय** (= ग्राह्य वस्तु) **इन्द्रिय-गोचर** होता है तो पहले **चित्त** उस विषय का **सम्यक् ग्रहण** करता है, **सम्पटिच्छन** करता है। चित्त की वह अवस्था **सम्पटिच्छन-चित्त** कहलाती है। उसके बाद चित्त उस विषय का निर्णय करता है, **संतीरण** करता है। चित्त की वह अवस्था **संतीरण चित्त** कहलाती है।]

८. उपेक्खासहगतं चक्खुविञ्ञाणं
उपेक्खासहगतं सोतविञ्ञाणं
उपेक्खासहगतं घाणविञ्ञाणं
उपेक्खासहगतं जिह्वाविञ्ञाणं

सुखसहगतं कायविञ्ञाणं
उपेक्खासहगतं सम्पटिच्छनचित्तं
सोमनस्ससहगतं सन्तीरणचित्तं
उपेक्खासहगतं सन्तीरणचित्तं चेति—
इमानि अट्ठपि कुसलविपाकाहेतुकचित्तानि नाम।

[चक्षु, श्रोत, घ्राण, जिह्वा-विज्ञान तो पूर्ववत्। **सुखसहगत काय-विज्ञान कुशल-विपाक** ही होता है। **सम्पटिच्छन-चित्त** भी पूर्ववत्। **सन्तीरण-चित्त** के **सोमनस्स-सहगत** तथा **उपेक्षा-सहगत** दो भेद कर दिये गये हैं।]

९. उपेक्खासहगतं पञ्चद्वारावज्जनचित्तं
उपेक्खासहगतं मनोद्वारावज्जनचित्तं
सोमनस्ससहगतं हसितुप्पादचित्तंचेति
इमानि तीणि पि अहेतुक क्रिया चित्तानि नाम।

[**चक्षु, श्रोत्र** आदि पांच इन्द्रियों की किसी भी विषय को ग्रहण करने की **क्रिया** से संबन्धित चित्त **पञ्चद्वारावज्जन चित्त** कहलाता है। इसी प्रकार **मन** की किसी भी विषय को ग्रहण करने की **क्रिया** (=प्रवृत्ति) से संबन्धित चित्त **मनोद्वारावज्जन चित्त** कहलाता है। **सौमनस्य** के साथ मुस्कराहट मिला चित्त **'हसितुप्पाद चित्त'** कहलाता है।]

(१) **उपेक्षासहगत पञ्चद्वारावर्जन चित्त**
(२) **उपेक्षासहगत मनोद्वारावर्जनचित्त**
(३) **सोमनस्ससहगत हसितुप्पादचित्त**

[ये तीन अहेतुक ही नहीं, ये तीन क्रिया-चित्त भी होते हैं, अर्थात् इनका कोई विपाक (=फल) नहीं होता। **सोमनस्ससहगत हसितुप्पादचित्त** केवल अर्हतों को ही उत्पन्न होता है।]

इच्चेव सब्बथा पि अट्ठारसाहेतुकचित्तानि समत्तानि।
[ये अट्ठारह अहेतुक चित्त समाप्त हुए।]

१०. सत्ताकुसलपाकानि, पुञ्ञापाकानि अट्ठधा।
क्रियाचित्तानि तीणी ति अट्ठारस अहेतुका॥

अकुशल-विपाक चित्त	७
कुशल-विपाक-चित्त	८
क्रिया-चित्त	३
कुल	१८

सोभन चित्तानि

११. पापहेतुकमुत्तानि सोभनानि ति वुच्चरे।
एकूनसट्ठि चित्तानि अथेकनवुति पि वा॥

[**अकुशल-चित्तों** (१२) तथा **अहेतुक चित्तों** (१८) को छोड़ शेष ५९ चित्त **कुशल-चित्त** कहलाते हैं; उन्हीं की ९१ गिनती भी है। **सोभन चित्त** (= सहेतुक कुशल चित्त)]

कामावचर सोभनानि

१२. १. सोमनस्ससहगतं ञाणसम्पयुत्तं असङ्खारिकं
२. सोमनस्ससहगतं ञाणसम्पयुत्तं ससङ्खारिकं
३. सोमनस्ससहगतं ञाणविप्पयुत्तं असङ्खारिकं
४. सोमनस्ससहगतं ञाणविप्पयुत्तं ससङ्खारिकं

५. उपेक्खासहगतं ञाणसम्पयुत्तं असङ्खारिकं
६. उपेक्खासहगतं ञाणसम्पयुत्तं ससङ्खारिकं
७. उपेक्खासहगतं ञाणविप्पयुत्तं असङ्खारिकं
८. उपेक्खासहगतं ञाणविप्पयुत्तं ससङ्खारिकं
इमानि अट्ठ पि कामावचरकुसलचित्तानि नाम।

ञाण=अमोह=सम्यक्-दृष्टि
अलोभ=परसेवा-बुद्धि
अदोस=मेत्ता=परहित-बुद्धि
[ञान-विप्रयुक्त आचरण या तो बच्चों का होता है, या अर्हतों का]

१३. ९. सोमनस्ससहगतं ञाणसम्पयुत्तं असङ्खारिकं
१०. सोमनस्ससहगतं ञाणसम्पयुत्तं ससङ्खारिकं
११. सोमनस्ससहगतं ञाणविप्पयुत्तं असङ्खारिकं
१२. सोमनस्ससहगतं ञाणविप्पयुत्तं ससङ्खारिकं
१३. उपेक्खासहगतं ञाणसम्पयुत्तं असङ्खारिकं
१४. उपेक्खासहगतं ञाणसम्पयुत्तं ससङ्खारिकं
१५. उपेक्खासहगतं ञाणविप्पयुत्तं असङ्खारिकं
१६. उपेक्खासहगतं ञाणविप्पयुत्तं ससङ्खारिकं
इमानि अट्ठ पि सहेतुककामावचरविपाकचित्तानि नाम

[ये **कुशल-चित्तों** का **विपाक** होने से **विपाक-चित्त**; इन का आगे **विपाक** न होने से ये **अविपाक-चित्त।** विपाक का फिर विपाक नहीं होता।]

१४. १७. सोमनस्ससहगतं ञाणसम्पयुत्तं असङ्खारिकं
१८. सोमनस्ससहगतं ञाणसम्पयुत्तं ससङ्खारिकं
१९. सोमनस्ससहगतं ञाणविप्पयुत्तं असङ्खारिकं
२०. सोमनस्स सहगतं ञाणविप्पयुत्तं ससङ्खारिकं
२१. उपेक्खासहगतं ञाणसम्पयुत्तं असङ्खारिकं
२२. उपेक्खासहगतं ञाणविप्पयुत्तं ससङ्खारिकं
२३. उपेक्खासहगतं ञाणविप्पयुत्तं असङ्खारिकं
२४. उपेक्खासहगतं ञाणविप्पयुत्तं ससङ्खारिकं
इमानि अट्ठ पि सहेतुककामावचरक्रियाचित्तानि नाम

[जैसे सामान्यजन; वैसे अर्हत भी दानादि पुण्यकर्म करते ही हैं, किन्तु उनके वे कर्म **'कुशल-कर्म'** नहीं होते, किसलिये? **विपाक** न होने से। वे जो भी **'कुशल'** करते हैं, वह **'क्रिया'** मात्र होता है, उसका **'विपाक'** नहीं होता। **'अकुशल'** तो अर्हतों से होता ही नहीं।]

इच्चेवं सब्बथा पि चतुवीसति सहेतुककामावचरकुसल+**सहेतुक कामावचर विपाक**+**सहेतुककामावचरक्रिया**=कुल २४ चित्त हुए।

१५. वेदना ञाण सङ्खार भेदेन चतुवीसति।
सहेतु कामावचर पुञ्ञापाकक्रिया मता॥

[**सोमनस्स, उपेक्षा** भेद से; **ज्ञान-सम्प्रयुक्त, ज्ञान-विप्रयुक्त** भेद से, **असङ्खार,** ससङ्खार भेद से, **अकुशल**+**विपाक**+**क्रिया** (८)—कुल २४ चित्त हुए।]

१६. कामे तेवीस पाकानि पुञ्ञापुञ्ञानि वीसति।
एकादस क्रिया चेति चतुपञ्ञास सब्बथा॥

[कामावचर के कुल चित्तों की संख्या ५४ है—

अकुशल विपाक	—	७	कुशल	८
अहेतुक कुशल विपाक	—	८	अकुशल	१२
				२०
सहेतुक विपाक	—	८		
		२३		
अहेतुक क्रिया चित्त	—	३		
सहेतुक क्रिया चित्त	—	८		
		११		

कुल—२३ + २० + ११=५४

रूपावचरसोभनचित्त

१७. **कामावचर चित्तों** के अतिरिक्त शेष सभी चित्तों की अनुभूति **केवल** योगियों की अनुभूति का विषय है। पाँच **रूपावचर कुशल**-चित्त ये हैं—

(१) वितर्क विचार प्रीति सुखेकाग्रता सहित प्रथम ध्यान
(२) विचार प्रीति सुखेकाग्रता सहित द्वितीय ध्यान
(३) प्रीति सुखेकाग्रता सहित तृतीय ध्यान
(४) सुखेकाग्रता सहित चतुर्थ ध्यान
(५) उपेक्षा एकाग्रता सहित पञ्चम ध्यान।

१८. **ध्यान-चित्तों** के **विपाक** भी वैसे ही होते हैं। इस लिये **पाँच विपाक चित्त** भी इस प्रकार हैं—

(१) वितर्क विचार प्रीति सुखेकाग्रता सहित प्रथम ध्यान विपाक-चित्त।

(२) विचार प्रीति सुखेकाग्रता सहित द्वितीय ध्यान विपाक-चित्त।

(३) **प्रीति सुखेकाग्रता सहित तृतीय ध्यान विपाक-चित्त**
(४) **सुखेकाग्रता सहित चतुर्थ ध्यान विपाक-चित्त**
(५) **उपेक्षा एकाग्रता सहित पञ्चम ध्यान विपाक-चित्त।**

जब जीवन्मुक्त (=अर्हन्त) पुरुष योगाभ्यास करते हैं तो उनकी चित्तावस्था **'क्रिया-चित्त'** कहलाती है। **'क्रिया-चित्त'** का मतलब है **विपाक-रहित चित्त।** अर्हन्तों के **रूपावचर क्रिया-चित्त** भी पांच ही हैं—

१९. (१) **वितर्क विचार प्रीति सुखेकाग्रता सहित प्रथम ध्यान क्रिया-चित्त।**

(२) **विचार प्रीति सुखेकाग्रता सहित द्वितीय-ध्यान क्रिया-चित्त**
(३) **प्रीति सुखेग्रता सहित• तृतीयध्यान क्रिया-चित्त**
(४) **सुखेकाग्रता सहित चतुर्थध्यान क्रिया-चित्त।**
(५) **उपेक्षेकाग्रता सहित पञ्चम ध्यान क्रिया-चित्त।**

२०. पञ्चधा झानभेदेन रूपावचरमानसं।
पुञ्ञपाकक्रियाभेदा तं पञ्चदसधा भवे॥

[**पुण्य, विपाक** और **क्रिया** भेद से पाँच प्रकार का **रूपावचर ध्यान** पन्द्रह प्रकार का हो जाता है।]

अरूपावचर सोभनानि

२१. **रूप-ध्यानों** से प्रणीततर, सूक्ष्म-तर **अरुप-ध्यान** हैं। चार **अरूपावचर कुशल-चित्त** ये हैं—

(१) **आकासानञ्चायतन कुसल चित्त**
(२) **विञ्ञाणञ्चायतन कुसल चित्त**
(३) **आकिञ्चञ्ञायतन कुसल चित्त**
(४) **नेवसञ्ञानासञ्ञायतन कुसल चित्त**

इन ध्यान-चित्तों के विपाक भी इन ध्यान-चित्तों जैसे ही होते हैं। चार **अरूपावचर विपाकचित्त** इस प्रकार हैं—

२२. (१) **आकासानञ्चायतन विपाकचित्त**
(२) **विञ्ञाणञ्चायतन विपाकचित्त**
(३) **आकिञ्चञ्ञायतन विपाकचित्त**
(४) **नेवसञ्ञानासञ्ञायतन विपाकचित्त**

जिस समय अर्हत **अरूपावचर** ध्यान-मग्न रहते हैं उस समय वे इन चार **क्रिया-चित्तों** का अनुभव करते हैं—

२३. (१) **आकासानञ्चायतन क्रिया-चित्त**
(२) **विञ्ञाणञ्चायतन क्रिया-चित्त**
(३) **आकिञ्चञ्ञायतन क्रिया-चित्त**
(४) **नेवसञ्ञानासञ्ञायतन क्रिया-चित्त**

२४. आलम्बनप्पभेदेन चतुधारुप्पमानसं।
पुञ्ञापाकक्रियाभेदा पुन द्वादसधा ठितं ॥

[**रूपावचर चित्त अङ्ग** भेद से पांच प्रकार का कहा गया है, किन्तु **अरूपावचर चित्त आलम्बन** (=ध्यान-विषय) के भेद से चार प्रकार का कहा गया है। इन सभी ध्यानों में **उपेक्षा तथा चित्तेकाग्रता** यही दो ध्यान अङ्ग रहते हैं।

पुण्य, विपाक तथा **क्रिया** भेद से, भिन्न **आलम्बनों** पर आश्रित ये चार प्रकार के ध्यान बारह प्रकार के हो जाते हैं।]

लोकुत्तर सोभनानि

२५. अरूप-ध्यानों से भी श्रेष्ठतर, प्रणीततर **लोकुत्तर-चित्त** हैं। **लोकुत्तर कुशल-चित्त** हैं—

(१) स्रोतापत्ति मार्ग चित्त।
(२) सकृदागामि मार्ग चित्त।
(३) अनागामि मार्ग चित्त।
(४) अर्हत मार्ग चित्त।

लोकुत्तर विपाक-चित्त हैं—

(१) स्रोतापत्ति विपाक चित्त
(२) सकृदागामि विपाक चित्त
(३) अनागामि विपाक चित्त
(४) अर्हत विपाक चित्त

२६. **स्रोतापत्ति मार्ग आदि** से उन-उन **क्लेशों** (=चित्त-मलों) का प्रहाण होता है। उन-उन क्लेशों का प्रहाण होने से जो समाधि उत्पन्न होती है, वही उस मार्ग का विपाक (=फल) है।

लोकुत्तरभूमि में क्रिया-चित्त नहीं होते। क्यों? क्योंकि स्रोतापत्ति मार्ग आदि से जब एक बार क्लेशों का प्रहाण हो गया तो पुनः प्रहाण नहीं?

२७. चतुमग्गप्पभेदेन चतुधा कुसलं तथा।
पाकं तस्स फलत्ता ति अट्ठधानुत्तरं मतं॥

[चार प्रकार का मार्ग-चित्त और चार प्रकार का ही उसका विपाक (=फल) चित्त मिलकर आठ प्रकार का अनुत्तर चित्त हुआ।]

संग्रह-गाथा

२८. द्वादसाकुसलानेवं कुसलानेकवीसति।
छत्तिंसेव विपाकानि क्रियाचित्तानि वीसति।

अकुशल		१२	
कामावचर	८	२१	
रूपावचर	५		
अरूपावचर	४		
लोकुत्तर	४		
अकुशल-विपाक	७	३६	
अहेतुक कामावचर कुशल विपाक	८		
सहेतुक कामावचर कुशल विपाक	८		
रूपावचर विपाक	५		
अरूपावचर विपाक	४		
लोकुत्तर विपाक	४		अकुशल—१२,
अहेतुक क्रिया चित्त	३	२०	कुशल—२१
कामावचर क्रिया चित	८		विपाक—३६
रूपावचर क्रिया चित्त	५		क्रियाचित्त—२०
अरूपावचर क्रिया चित्त	४		जोड़ ८९

२९. चतुपञ्ञासधा कामे रूपे पन्नरसीरये।
चित्तानि द्वादसारुप्पे अट्ठधानुत्तरे तथा।।
इत्थमेकूननवुतिप्पभेदं पन मानसं।
एकवीससतं वाथ विभजन्ति विचक्खणा।।

कामावचर चित्त	५४
रूपावचर	१५
अरूपावचर	१२
लोकुत्तर	८
जोड़	८९

३०. इन्हीं ८९ चित्तों की एक दूसरे क्रम से १२१ चित्तों के रूप में भी गिनती की जाती है—

(१) **वितर्क विचार प्रीति सुखेकाग्रता सहित प्रथम ध्यान स्रोतापत्ति मार्ग चित्त**

(२) **विचार प्रीति सुखेकाग्रता सहित द्वितीय ध्यान स्रोतापत्ति मार्ग चित्त**

(३) **प्रीति सुखेकाग्रता सहित तृतीय ध्यान स्रोतापत्ति मार्ग चित्त**

(४) **सुखेकाग्रता सहित चतुर्थ ध्यान स्रोतापत्ति मार्ग चित्त**

(५) **उपेक्खेकाग्रता सहित पञ्चम ध्यान स्रोतापत्ति मार्ग चित्त**

ये पांचों स्रोतापत्ति मार्ग चित्त हैं। इसी क्रम से स्रोतापत्ति **सकृदागामि-अनागामी-अरहतचित्तों** की भी गिनती की जाय तो २० की गिनती पूरी होती है। इसी प्रकार **फल-चित्त** भी २० ही होंगे। २० **मार्गचित्त** तथा २० **फलचित्त** मिलकर ४० (चालीस) **लोकुत्तर चित्त** हो जाते हैं।

३१. झानङ्गयोगभेदेन कत्वेकेकं तु पञ्चधा।
वुच्चतानुत्तरं चित्तं चत्तालीसविधं ति च॥
यथा च रूपावचरं गय्हतानुत्तरं तथा।
पठमादिज्झानभेदे आरूप्पंचापि पञ्चमे॥
एकादसविधं तस्मा पठमादिकमीरितं।
झानमेकेकमन्ते तु तेवीसतिविधं भवे॥
सत्ततिंसविधं पुञ्ञं द्विपञ्ञासविधं तथा।
पाकमिच्चाहु चित्तानि एकवीससतं बुधा॥

[**पांचों ध्यानों** को **लोकुत्तर चित्तों** से मिलाकर **मार्गचित्त** और उसी प्रकार **फलचित्तों** की भी गिनती करने से चालीस की संख्या पूरी होती है।

जैसे हम **रूपावचर** के **ध्यानों** को लेते हैं, वैसे ही **लोकुत्तर** (=अनुत्तर) को भी लेना चाहिये। बारह प्रकार के **अरूपावचर** की गिनती **पञ्चम-ध्यान** में होनी चाहिये। क्यों? **पञ्चम-ध्यान** में **उपेक्षा, एकाग्रता** जो दो ध्यानाङ्ग हैं वे ही **अरूपावचर** में भी रहते हैं। इसलिये **प्रथम, द्वितीय, तृतीय,** तथा **चतुर्थ ध्यान** तो ग्यारह तरह का होता है—एक **कुशल-चित्त,** एक **विपाक-चित्त,** एक **क्रिया-चित्त,** चार **मार्ग-सम्प्रयुक्त** चित्त तथा **चार फल-सम्प्रयुक्त** चित्त। पञ्चम-ध्यान में कुशल, विपाक, क्रिया के हिसाब से १२ चित्त और मिलाकर कुल २३ हो जाते हैं।

पहले जिस **कुशल चित्त** को २१ प्रकार का कहा गया है, वह इस क्रम से सैंतीस तरह का हो जाता है। वैसे ही चार **लोकोत्तरफल चित्तों** को ध्यान-युक्त करके यदि बीस प्रकार का माना जाय तो पहले छत्तीस **विपाक चित्तों** में मिलकर **विपाक-चित्तों** की संख्या बावन हो जाती है। इन्हीं को बुद्धिमान जन एक सौ बीस प्रकार का भी गिनते हैं।]

द्वितीय परिच्छेद

चैतसिक संग्रह विभाग

एकुप्पादनिरोधा च एकालम्बनवत्थुका।
चेतोयुत्ता द्विपञ्ञासधम्मा चेतसिका मता॥

[जिनकी एक ही साथ उत्पत्ति तथा निरोध होता है, जिन का (रूप, शब्द, गन्ध आदि) एक ही आलम्बन तथा (चक्षु, श्रोत्र, घ्राण आदि) एक ही वास्तु (=इन्द्रिय) होती है, जो चित्त (=विज्ञान) के साथ संयुक्त रहते हैं, ऐसे ५२ धर्म चैतसिक कहलाते हैं]

अञ्ञसमान चेतसिका

२. **स्पर्श, वेदना, संज्ञा, चेतना, एकाग्रता, जीवितेन्द्रिय, मनसिकार**—ये सात चैतसिक सभी चित्तों में उपलब्ध होते हैं।

स्पर्श=चित्त-विषय (=आलम्बन) को जो स्पर्श करे
वेदना=सुख-दुःखादि की अनुभूति
संज्ञा=चित्त विषय (=आलम्बन) की पहचान (=संज्ञा)
चेतना=चेतानेवाली, आलम्बन में लगाने वाली
एकाग्रता=समाधि [यह सभी चित्तों में न्यूनाधिक रहती है।]
जीवितिन्द्रय=अरूप-धर्मों का जीवन
मनसिकार=पूर्व-मन से विसदृश करनेवाला मनसिकार

[ये सात **चैतसिक धर्म** सभी ८९ चित्तों में विद्यमान रहते हैं।]

(ख) **वितर्क, विचार, अधिमोक्ष, वीर्य, प्रीति,** और **छन्द**—ये छः चैतसिक **'प्रकीर्ण'** कहलाते हैं। पहले सात और ये छः मिलकर तेरह चित्त **'अञ्जसमान' चैतसिक** कहलाते हैं।

३. **वितर्क**=चित्त का विषय में लगना

विचार=सूक्ष्म वितर्क

अधिमोक्ष=चित्त-विषय (=आलम्बन) में निश्चित स्थिति

वीर्य=वीरभाव (=उत्साह)

प्रीति=प्रसन्नता

छन्द=कुछ करने की इच्छा

[क्योंकि ये छः **चैतसिक अकुशल, कुशल,** तथा **अव्याकृत** चित्तों में समान-भाव से रहते हैं; इसीलिये इन्हें **'प्रकीर्ण'** कहते हैं।

पहले सात और ये छः कुल तेरह **चैतसिक अकुशल, कुशल,** तथा **अव्याकृत** चित्तों में समान-भाव से रहते हैं।]

अकुशल चैतसिक

४. **मोह, अहिरिकं, अनोत्तपं, उद्धच्चं, लोभो, दिट्ठि, मानो, दोसो, इस्सा, मच्छरियं, कुक्कुच्चं, थीनं, मिद्धं तथा विचिकिच्छा**—ये चौदह चैतसिक **अकुशल-चैतसिक** कहलाते हैं।

मोह=चित्त का अन्धापन, मूढ़ता

अहिरिकं=निर्लज्जता

अनोत्तप्पं=अ-भीरुता (पाप कर्म में भय न मानना)

उद्धच्चं=उद्धतपन, चञ्चलता

लोभो=तृष्णा

दिट्ठि=मिथ्या-दृष्टि

मानो=अहंकार

दोसो=द्वेष

इस्सा=ईर्षा (दूसरे की सम्पत्ति को न सह सकना)

मच्छरियं=मात्सर्य्य (अपनी सम्पत्ति को छिपाने की प्रवृत्ति)

कुक्कुच्चं=कौकृत्य (कृत-अकृत के बारे में पश्चात्ताप)

विचिकिच्छा=विचिकित्सा (संशयालुपन)

ये चौदह **चैतसिक** केवल **अकुशल** चित्तों में ही होते हैं।

सोभन (=शोभन) चैतसिक

५. **सद्धा, सति, हिरि, ओत्तप्पं, अलोभो, अदोसो, तत्रमज्झत्तता, कायपस्सद्धि, चित्त-पस्सद्धि, कायलहुता, चित्त-लहुता, कायमुदुता, चित्त-मुदुता, काय-कम्मञ्ञता, चित्तकम्मञ्ञता कायपागुञ्ञता, चित्त-पागुञ्ञता, कायुजुकता, चित्तुजुकता**—ये १९ **चैतसिक शोभन-साधारण चैतसिक** कहलाते हैं।

सद्धा (=श्रद्धा) चित्त की प्रसन्नता

सती (=स्मृति) जागरूकता, जो पहरेदार की तरह चित्त की पाप से रक्षा करती है

हिरि और **ओत्तप्प**=लज्जा तथा भय

अलोभ=त्याग

अदोस=मैत्री, दूसरों की हित-कामना

तत्रमज्झत्तता=चित्त-चैतसिक धर्मों को समभाव से प्रवृत्त करने का सामर्थ्य

काय प्रश्रब्धि=वेदना, संज्ञा, संखार स्कन्धों के लिये सम्मिलित नाम, उनकी प्रसन्नता

चित्तप्रश्रब्धि=विज्ञान-स्कन्ध की शान्ति

लहुता=हलकापन; कम्मञ्ञता=कर्मन्यता

मुदुता=मृदुपन; पागुञ्ञता=प्रगुणता

उजुकता=ऋजुपन=अकुटिल-पन।

[ये १९ **चैतसिक** सभी **कुशल-चित्तों** में विद्यमान रहते हैं।]

तीन विरतियाँ (अनियत-शोभना)

६. **सम्मावाचा, सम्माकम्मन्तो, सम्मा आजीवो**—ये तीन विरतियाँ हैं। **सम्मावाचा** (=सम्यक् वाणी) मिथ्या वाणी से विरति। **सम्माकम्मन्तो** (=सम्यक् कर्मान्त) मिथ्या-कर्मान्त से विरति। **सम्मा आजीवो** (=सम्यक् आजीविका) मिथ्या आजीविका से विरति।

७. **करुणा** तथा **मुदिता** ये दो अप्रमाण (=असीम) हैं। तीसरी प्रज्ञा इन्द्रिय हैं।

१९ शोभन चैतसिक, तथा ये छः अनियत-शोभन-चैतसिक कुल मिलाकर २५ चैतसिक **शोभन-चैतसिक** ही हैं।

संग्रह-गाथा

८. तेरसअञ्ञसमाना च चुद्दसाकुसला तथा।
सोभना पञ्चवीसा ति द्विपञ्ञास पवुच्चरे॥

[**अन्य समान** १३, **अकुशल** १४ तथा **शोभन** २५—कुल **चैतसिक** ५२ हैं।]

चैतसिक सम्प्रयोग-क्रम

९. तेसं चित्तावियुत्तानं यथायोगमितो परं।
चित्तुप्पादेसु पच्चेकं सम्पयोगो पवुच्चति॥
सत्त सब्बत्थयुञ्जन्ति यथायोगं पकिण्णका।
चुद्दसाकुसलेस्वेव सोभनेस्वेव सोभना॥

[**सर्वचित्त साधारण** सात **चैतसिक** सभी चित्तों में समान रूप से रहते हैं। छः **प्रकीर्ण** यथा-योग (कहीं रहते हैं, कहीं नहीं) रहते हैं। १४

अकुशल चैतसिक अकुशल-चित्तों में रहते हैं। इसी प्रकार शेष २५ **शोभन चैतसिक शोभनचित्तों** में रहते हैं।]

अञ्ञसमान चैतसिक सम्प्रयोग

१०. **सात सर्वचित्त-साधारण चैतसिक धर्म** सभी ८९ चित्तों में मिलते हैं।

११. **वितर्क—कामावचर चित्तों** (५४) में से **दो-पञ्चविज्ञान** (१०) **चित्त** छोड़कर शेष ४४ तथा **प्रथम ध्यान** सम्बन्धी ११ चित्त; कुल ५५ चित्तों में उत्पन्न होता है।

विचार—उक्त ५५ चित्तों में तथा **द्वितीय ध्यान** सम्बन्धी ११ चित्तों में—कुल ६६ चित्तों में **पैदा** होता है।

अधिमोक्खो—द्विपञ्च विज्ञान और मोमूह चित्तों में से एक विचिकिच्छा चित्त (१०+१)=११ को छोड़कर शेष ८९–११=७८ चित्तों में होता है।

वीर्य्य—पञ्चद्वारावर्जन १+द्विपञ्च विञाण १०+सम्पटिच्छन २+संतीरण ३=१६ चित्तों को छोड़कर ७३ चित्तों में होता है।

प्रीति—दोमनस्स २+उपेक्खासहगत ६+अहेतुक १४+कामावचर सहेतुक चित्त १२+पंचमझानिक चित्त २३+कायविज्ञान २+चतुत्थझानिक चित्त ११=७० चित्तों को छोड़कर वा ३८ चित्तों को छोड़कर ५१ चित्तों में होता है।

छन्द—दो मोमूह+१८ अहेतुक चित्तों=२० चित्तों को छोड़कर शेष ६९ चित्तों में मिलता है।

१२. छसट्ठि पञ्चपञ्ञास एकादस च सोळस।
सत्तति वीसति चेव पकिण्णकविवज्जिता॥
पञ्चपञ्ञास छसट्ठिट्ठसत्तति तिसत्तति।
एकपञ्ञास चेकूनसत्तति सपकिण्णका॥

[१२१ के क्रम से ६६ छोड़कर ५५, ५५ छोड़कर ६६; ८९ के क्रम से ११ छोड़कर ७८, सोलह छोड़कर ७३; १२० के क्रम से ७० छोड़कर ५१; ८९ के क्रम से २० छोड़कर ६९ चित्तों में होता है।]

अकुशल चैतसिक सम्प्रयोग

१३. अकुशल **चैतसिकों** में से **मोह, अहिरिक, अनोत्तप्प, उद्धच्च**—ये चार **सब्बाकुसलसाधारण चैतसिक** कहलाते हैं अर्थात् सभी बारह अकुशल चित्तों में रहते हैं।

लोभ आठ **लोभसहगत चित्तों** में ही मिलता है।
दिट्ठि चार **दृष्टिगत सम्प्रयुक्त चित्तों** में।
मान चार **दृष्टिगत विप्रयुक्त चित्तों** में।
दोस (=द्वेष) ईर्षा, मात्सर्य्य तथा **कौकृत्य** दो **पीटिघचित्तों में।**
थीन, मिद्ध पञ्च **ससङ्खारिक चित्तों** में।
विचिकिच्छा विचिकिच्छा-सहगत चित्त में ही।

१४. सब्बापुञ्ञेसु चत्तारो लोभमूले तयागता।
दोसमूलेसु चत्तारो ससङ्खारे द्वयं तथा॥
विचिकिच्छा विचिकिच्छाचित्ते चाति चतुद्दस।
द्वादसाकुसलेस्वेव सम्पयुज्जन्ति पञ्चधा॥

[चार **अकुशल चैतसिक** सभी **अकुशल-चित्तों** में, **लोभ, दृष्टि** तथा **मान** तीन **लोभ-मूल चित्तों** में, चार (**द्वेष, ईर्षा, मात्सर्य** तथा **कौकृत्य**) चैतसिक **दोष-मूल दो चित्तों** में; **थीन, मिद्ध** पांच **ससंखारिक चित्तों** में, **विचि-किच्छा विचिकिच्छासहगत चित्त** में ही—इस प्रकार यह चौदह **चैतसिक** बारह **अकुशलों** में सम्प्रयुक्त होते हैं।]

शोभन चैतसिक सम्प्रयोग

१५. **शोभन साधारण चैतसिक** सभी उनसठ चित्तों में प्रयुक्त होते हैं। तीनों **विरतियां (सम्मावाचा, सम्माकम्मन्तो, सम्मा आजीवो) लोकुत्तर चित्तों** में सभी एक साथ प्रयुक्त होती हैं, लौकिक चित्तों में कभी **कामावचर कुशल चित्तों** में ही पृथक पृथक दिखाई देती हैं। (करुणा-मुदिता) **अप्रमाण** जो हैं वे पंचम ध्यान-रहित **रूपावचर, अरूपावचर** चित्तों में अर्थात् १२ चित्तों में + **कामावचर कुशल-चित्तों** में + **सहेतुक कामावचर क्रिया-चित्तों** में इस प्रकार अट्ठाईस चित्तों में ही कभी कभी नाना प्रकार से उत्पन्न होते हैं। कुछ का मत है कि उपेक्षा सहगत चित्तों में करुणा-मुदिता नहीं होती। प्रज्ञा १२ **ज्ञान सम्प्रयुक्त कामावचर चित्तों** में, सभी **महग्गत लोकुत्तर चित्तों** (३५) में अर्थात् कुल ४७ चित्तों में सम्प्रयुक्त होती है।

१६. एकूनवीसति धम्मा जायन्तेकूनसट्ठिसु।
तयो सोळसचित्तेसु अट्ठवीसतियं द्वयं॥
पञ्ञा पकासिता सत्तचत्ताळीसविधेसु पि।
सम्पयुत्ता चतुद्धेवं सोभनेस्वेव सोभना॥

[१९ चैतसिक धर्म ५९ चित्तों में उत्पन्न होते हैं; तीन सोलह चित्तों में, **दो** अट्ठाइस चित्तों में, प्रज्ञा संतालीस चित्तों में —इस तरह **शोभन चैतसिक** चार प्रकार से **शोभन चित्तों** में प्रयोग में आते हैं।]

संग्रह गाथा

१७. इस्सा-मच्छेर-कुक्कुच्च विरति करुणादयो।
नाना कदाचि मानो च थीनमिद्धं तथा सह॥
यथावुत्तानुसारेन सेसा नियतयोगिनो।
सङ्गहञ्च पवक्खामि तेसं दानि यथारहं॥

[**ईर्षा, मात्सर्य, कौकृत्य,** विरतियाँ तथा **करुणा, मुदिता अप्रमाण-भावना** प्रस्पर एक साथ नहीं रहतीं। जब **ईर्षा** होती है, उस समय **मात्सर्य्य-कौकृत्य** नहीं, जब शारीरिक दुश्चरित से विरति उस समय **वचीदुश्चरित** तथा **मिथ्याजीव विरति** नहीं; जब करुणा उस समय **मुदिता** नहीं—इस प्रकार ये चैतसिक धर्म पृथक् पृथक् उत्पन्न होते हैं। कभी होते हैं कभी नहीं भी होते। इसी प्रकार **मान** भी **दृष्टिगत-विप्रयुक्त-लोभ-सहगत चित्तों** में कभी उत्पन्न होता है। **थीन-मिद्ध**—ये दोनों पांचों **अकुशल संखारिक चित्तों** में कभी कभी उत्पन्न होते हैं; उत्पन्न होते हैं तो एक साथ ही उत्पन्न होते हैं। शेष अकुशल आदि चैतसिक नियम से प्रयुक्त होते हैं। उनका यथा-योग्य संग्रह इस प्राकर है—

१८. छत्तिसानुत्तरे धम्मा पञ्चतिंस महग्गते।
अट्ठतिंसापि लब्भन्ति कामावचरसोभने॥
सत्तवीसत्यपुञ्ञम्हि द्वादसाहेतुके ति च।
यथासम्भवयोगेन पञ्चधा तत्थ सङ्गहो॥

[**अनुत्तर** (=लोकोत्तर) चित्तों में छत्तीस चैतसिक, **रूपावचर** तथा **अरूपावचर** चित्तों में पैंतीस, **कमावचर-शोभन चित्तों** में अड़तीस चैतसिक मिलते हैं। **अकुशल चित्तों** में २७ चैतसिक, **अहेतुक चित्तों** में बारह—इस प्रकार यथा-सम्भव-योग से यह पांच प्रकार का संग्रह है।]

लोकुत्तर चैतसिक संग्रह

१९. कैसे? **लोकुत्तर चित्तों** में से आठ **प्रथम ध्यानिक चित्तों** में तेरह **'अन्य समान'** चैतसिक होते हैं तथा **अप्रमाण्ण** (२) छोड़ कर शेष २३ **शोमन चैतसिक** अर्थात् कुल ३६ धर्म संग्रहीत होते हैं। उसी प्रकार आठ **द्वितीय ध्यानिक चित्तों** में तेरह **'अन्य समान'** चैतसिकों में से **'वितर्क'** छोड़कर शेष बारह तथा **अप्रमाण** (२) छोड़कर शेष २३ **शोमन चैतसिक**

अर्थात् कुल ३५ चैतसिक-धर्म संग्रहीत होते हैं। इसी प्रकार आठ तृतीय ध्यानि चित्तों में तेरह **'अन्य समान'** चैतसिकों में से **वितर्क-विचार** छोड़कर शेष ग्यारह तथा २३, चौंतीस **चैतसिक धर्म** संग्रहीत होते हैं। इसी प्रकार आठ **चतुर्थ-ध्यानि चित्तों** में तेरह **'अन्यसमान'** चैतसिकों में से **वितर्क-विचार-प्रीति** छोड़कर १० + २३ = तेतीस चैतसिक संग्रहीत होते हैं। इसी प्रकार आठ **पंचम-ध्यानि चित्तों** में **'सुखवेदना'** के स्थान में **उपेक्षा-वेदना** को लेकर वे तेंतीस चैतसिक संग्रहीत होते हैं। इस प्रकार लोकोत्तर चित्तों में **प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान......पंचम ध्यान** के हिसाब से पांच प्रकार का संग्रह होता है।

२०. छत्तिंस पञ्चतिंसाथ चतुत्तिंस यथाक्कमं।
तेत्तिंसद्वयमिच्चेवं पञ्चधानुत्तरे ठिता॥

[**अनुत्तर चित्तों में** ३६, ३५, ३४, ३३ तथा ३३ इस प्रकार पांच तरह से चैतसिकों का संग्रह होता है।]

महग्गत चैतसिक संग्रह

२१. **महग्गत** (=रूपावचर-अरूपावचर) चित्तों में से **कुशल-विपाक क्रिया** इन तीन **प्रथम-ध्यानिक चित्तों** में **'अन्यसमान'** तेरह चैतसिक रहते हैं, तथा तीन विरतियों को छोड़कर शेष २२ **शोभन चैतसिक** रहते हैं— इस प्रकार कुल ३५ चैतसिक-धर्म संग्रहीत होते हैं। **करुणा** तथा **मुदिता** में से एक एक का ही ग्रहण योग्य है। इसी प्रकार **द्वितीय ध्यानिक चित्तों** में **वितर्क** को छोड़कर कुल ३४ चैतसिक होते हैं। वैसे ही **तृतीय ध्यानिक चित्तों** में **वितर्क-विचार** छोड़कर कुल ३३ चैतसिक होते हैं। **चतुर्थ ध्यानिक** चित्तों में **वितर्क-विचार-प्रीति** छोड़कर कुल ३२ चैतसिक होते हैं। **कुशल-विपाक-क्रिया** चित्त के रूप में तीन + **अरूपावचर** १२ = कुल १५ **पञ्चम ध्यानिक चित्तों** में **अप्रमाण्या** चैतसिक नहीं रहते। इसलिये ३२-२=३०

ही चैतसिक रहते हैं। इस प्रकार २७ **महग्गत चित्तों** में प्रथम ध्यान आदि पांच ध्यानों के क्रम से पांच तरह से संग्रह होता है।

२२. पञ्चतिंस चतुत्तिंस तेत्तिंस च यथाक्कमं।
वत्तिंस चेव तिंसेति पञ्चधा व महग्गते॥

[**महग्गत** (रूपावचर तथा अरूपावचर) चित्तों में ३५, ३४, तैंतीस, ३२ और ३०—इस प्रकार पांच तरह से चैतसिकों का संग्रह होता है।]

कामावचर शोभन चैतसिक संग्रह

२३. **कामावचर** शोभन चित्तों में से प्रथम दो **(असंखारिक, ससंखारिक)** चित्तों में तेरह **'अन्यसमान'** चैतसिक तथा २५ **शोभन** (=कुशल चैतसिक), कुल अड़तीस चैतसिक रहते हैं। **अप्रमाण्या** २+विरतियां ३ इन पांचों को एक एक करके पृथक्-पृथक् सम्मिलित करना चाहिये। इसी प्रकार दूसरे जोड़े में **ज्ञान** (=प्रज्ञा) चैतसिक को छोड़कर शेष सैंतीस चैतसिक तीसरे जोड़े में **ज्ञान (=प्रज्ञा) युक्त,** किन्तु **प्रीति-रहित,** इसलिये सैंतीस चैतसिक। चौथे जोड़े में ज्ञान (=प्रज्ञा) तथा प्रीति दोनों से रहित; इसलिये छत्तीस। **क्रिया-चित्त** (अर्हतों के चित्त) में **विरति** नहीं है। **क्रिया-चित्तों** के भी जो चारों जोड़े हैं उनमें भी पूर्वोक्त क्रम से ३८–३=३५; ३७–३=३४; ३७–३=३४ तथा ३६–३=३३ चैतसिक संगृहीत होते हैं। उसी प्रकार **विपाक** चित्तों में **अप्रमाण्या** (२), विरति (३) को छोड़ कर शेष पूर्वोक्त क्रम से ही ३८–५=३३; ३७–५=३२; ३७–५=३२; ३६–५=३१ चैतसिक होते हैं। इस प्रकार २४ कामावचर शोभन चित्तों में दो दो करके बारह तरह से संग्रह होता है।

संग्रह गाथा

२४. अट्ठतिंस सत्ततिंसद्वयं छत्तिंसकं सुभे।
पञ्चतिंस चतुतिंसद्वयं तेतिंसकं क्रिये॥

तेत्तिंस पाके बत्तिंस द्वयेकतिंसकं भवे।
सहेतुकामावचर पुञ्ञ पाक क्रिया मने॥
न विज्जन्तेथ विरती क्रियासु च महग्गते।
अनुत्तरे अप्पमञ्ञा कामपाके द्वयं तथा॥
अनुत्तरे झानधम्मा अप्पमञ्ञा च मज्झिमे।
विरती ञाणपीती च परित्तेसु विसेसका॥

[(कामावचर) **कुशल चित्तों** में (पहले दो में) अड़तीस चैतसिक होते है, दूसरे दो में सैंतीस, तीसरे जोड़े में भी सैंतीस चैतसिक; चौथे जोड़े में छत्तीस। इसी प्रकार क्रिया चित्तों के जोड़ों में भी ३५, ३४, ३४, ३३ चैतसिक होते हैं।

क्रिया-चित्तों में तथा महग्गत (= रूपावचर + अरूपावचर) चित्तों में विरतियाँ नहीं होतीं। **लोकुत्तर** चित्त में विरतियां तो नियत रूप से हैं, किन्तु **करुणा-मुदिता** अप्रमाण्या नहीं हैं। **सहेतुक कामावचर विपाक चित्त** में न **विरतियां** होती हैं, न **अप्रमाण्या**।

अनुत्तर (= लोकत्तर चित्तों) में ध्यानाङ्ग विशेष रूप से होते हैं। **महग्गात** चित्तों में वे ध्यान-धर्म तथा अप्रामाण्या में विशेष रूप से होती हैं। **परित्तों** (सहेतुक कामावचर चित्तों) में **विरति**, ज्ञान (= **प्रज्ञा**) तथा **प्रीति**—ये तीन धर्म विशेष रूप से होते हैं, अर्थात् वे सर्वचित्त साधारण धर्म नहीं।]

अकुसल चैतसिक संग्रह

२५. **लोभमूलिक** (आठ) **अकुशल चित्तों** में जो पहले **असङ्खारिक** चित्त हैं उनमें तेरह **अञ्ञसमान** चैतसिक + (मोह, अहिरिक, अनोत्तप्प **तथा** उद्धच्च) चारों **अकुशल साधारण चैतसिक** अर्थात् १७ चैतसिकों के अतिरिक्त लोभ और दृष्टि कुल १९ चैतसिक धर्म संग्रहीत होते हैं। इसी प्रकार **सोमनस्स सहगत दिट्ठिविप्पयुत्त असङ्खारिक चित्त** में लोभ तथा मान चैत-

सिकों के साथ १९ चैतसिक धर्म संग्रहीत होते हैं। इसी प्रकार तृतीय **(उपेक्खा सहगत दिट्ठिगत सम्पयुत्त)** असङ्खारिक चित्त में प्रीति-वर्जित, लोभ तथा दृष्टि चैतसिकों के साथ अठारह चैतसिक संग्रहीत होते हैं। इसी प्रकार चतुर्थ **(उपेक्खा सहगत दिट्ठिगत विप्पयुत्त)** असङ्खारिक चित्त में लोभ तथा मान चैतासिकों के साथ अठारह चैतसिक संग्रहीत होते हैं।

२६. पांचवें **(दोमनस्स सहगत पटिघसम्पयुत्त)** असङ्खारिक चित्त में प्रीति वर्जित, दोस,इस्सा, मच्छरिय तथा कुकुच्च सहित वे (**प्रीति-वर्जित अन्यसमान** १२+**अकुशलसाधारण** ४+**ईर्षादि** ४) बीस चैतसिक-धर्म ही संग्रहीत होते हैं। इन ईर्षा, मच्छेर, कुकुच्च में से एक ही एक का संयोग होता है।

ससङ्खारिक चित्तों में थीन-मिद्ध का भी कभी कभी संयोग होता है। उन दोनों चैतसिकों को शामिल करके चैतसिकों की गिनती होनी चाहिए।

२७. **उपेक्खा सहगत उद्धच्च सम्पयुत्त** चित्त में छन्द-प्रीति वर्जित ११ अन्य समान चैतसिक, चार अकुशल-साधारण चैतसिक अर्थात् कुल १५ चैतसिक संग्रहीत होते हैं।

उपेक्खा सहगत विचिकिच्छा सहगत चित्त में अधिमोक्षवर्जित विचि-किच्छा सहित १५ चैतसिक धर्म ही संग्रहीत होते हैं।

इस प्रकार बारह अकुशल चित्तों में प्रत्येक का संयोग होने पर भी गणना की दृष्टि से सात प्रकार से ही संग्रह होता है।

संग्रह गाथा

२८. एकूनवीसट्ठारस वीसकेवीस वीसति।
द्वावीस पन्नरसेति सत्तधाकुसले ठिता॥
साधारणा च चत्तारो समाना च दसापरे।
चुद्दसेते पवुच्चन्ति सब्बाकुसलयोगिनो॥

[**लोभसहगत** चित्तों में प्रथम और तृतीय असङ्खारिक चित्तों में उन्नीस चैतसिक धर्म संग्रहीत होते हैं। पांचवें और सातवें में अठारह। **पटिघ-सम्पयुत्त** प्रथम चित्त में बीस चैतसिक, **लोभ सहगत** द्वितीय तथा तृतीय चित्त में **थीनमिद्ध** का संयोग होकर इक्कीस चैतसिक संग्रहीत होते हैं, छठे और आठवें चित्त में बीस चैतसिक। **पटिघसम्पयुक्त ससङ्खारिक** चित्त में थीन-मिद्ध सहित बाइस चैतसिक। दोनों **मोमूह** चित्तों में पन्द्रह चैतसिक। इस प्रकार से यह सात तरह का संग्रह हुआ।

चार चैतसिक **सब्बाकुशल साधारण** कहलाते हैं और लोभ, दिट्ठि, मान, दोस, इस्सा, मच्छरिय, कुक्कुच्च, थीन, मिद्ध, विचिकिच्छा ये दस **अकुशल समान** कहलाते हैं।]

अहेतुक चैतसिक संग्रह

२९. **अहेतुक चित्तों** में (सोमनस्स सहगत) **हसितुप्पाद** चित्त में छन्द वर्जित शेष बारह अन्य समान चैतसिक संग्रहीत होते हैं। इसी प्रकार **वोट्ठपन** (=अहेतुक क्रिया मनो-विज्ञान) चित्त में छन्द तथा प्रीति वर्जित शेष ग्यारह **अन्य समान** चैतसिक संग्रहीत होते हैं। इसी प्रकार **सुखसन्तीरण** (सोमनस्स सहगत) चित्त में **छन्द** तथा वीर्य्य वर्जित ग्यारह चैतसिक चित्त संग्रहीत होते हैं। **मनोधातु पञ्चद्वारावर्जन चित्त** के **अहेतुक पटिसन्धि-द्वय** में छन्द-प्रीति तथा वीर्य्य वर्जित दस चैतसिक संग्रहीत होते हैं। **द्विपञ्च विज्ञानों** में प्रकीर्ण चैतसिका (६) को छोड़ शेष **अन्य समान** चैतसिक संग्रहीत होते हैं।

इस प्रकार अठारह **अहेतुक** चित्तों में गणना के हिसाब से चार ही तरह का संग्रह होता है।

संग्रह गाथा

३०. द्वादसेकादस दस सत्त चा ति चतुब्बिधो।
अट्ठारसाहेतुकेसु चित्तुप्पादेसु सङ्गहो॥

अहेतुकेसु सब्बत्थ सत्त सेसा यथारहं।
इति वित्थारतो वुत्तो तेत्तिस विधसङ्गहो॥
इत्थं चित्ताविमुत्तानं सम्पयोगञ्च सङ्गहं।
ञत्वा भेदं यथायोगं चित्तेन समुद्दिसे॥

[बारह (ग्यारह, ग्यारह), दस तथा सात—इस प्रकार अट्ठारह अहेतुक चित्तों में चार प्रकार से चैतसिकों का संग्रह होता है।

अहेतुक चित्तों में सात चैतसिक सभी में होते हैं। शेष चैतसिक यथा योग्य संग्रहीत होते हैं। विस्तार पूर्वक कहा गया तेतीस तरह का संग्रह यूं है—

लोकुत्तर चित्तों में पांच प्रकार से
महग्गत चित्तों में पांच प्रकार से
सहेतुक कामावचर चित्तों में बारह प्रकार से
अकुशल चित्तों में सात प्रकार से
अहेतुक चित्तों में चार प्रकार से

कुल = ३३ प्रकार से

इस प्रकार चैतसिकों का सम्प्रयोग तथा संग्रह जानकर चित्त के साथ उनका यथा योग भेद कहे।]

तृतीय परिच्छेद

प्रकीर्णक संग्रह विभाग

१. सम्पयुत्ता यथायोगं तेपञ्ञास सभावतो।
चित्त चेतसिका धम्मा तेसं दानि यथारहं॥
वेदना हेतु तो किच्च द्वारारम्मण वत्थुतो।
चित्तुप्पादवसेनेव सङ्गहो नाम नीयते॥

[एक चित्त+बावन चैतसिक=कुल त्रेपन धर्म यथायोग कहे गये हैं। अब वेदना-क्रम, हेतु-क्रम, कृत्य-क्रम, द्वार-क्रम, आलम्बन-क्रम तथा वस्तु-क्रम से जो चित्तुत्पाद होते हैं, उस दृष्टि से उनका जो संग्रह होता है उसका वर्णन किया जाता है।]

वेदना संग्रह

२. तत्थ वेदना सङ्गहे ताव तिविधा वेदना, सुखा, दुक्खा, अदुक्खमसुखा चाति। सुखं, दुक्खं, सोमनस्सं, दोमनस्सं, उपेक्खाति च भेदेन पन पञ्चधा होति।

[वेदना तीन तरह की होती है, सुख, दुक्ख, अदुक्खमसुख। वेदना पांच तरह की भी मानी गई है—सुख, दुक्ख, सोमनस्स, दोमनस्स तथा उपेक्षा।

३. **सुखा वेदना**—सुख सहगत कुसल विपाक काय विञ्ञाण	१
दुखा-वेदना—दुक्ख सहगत अकुसलविपाक	१
सोमनस्स-वेदना—लोभमूल चित्त—	४
कामावचर सोभन—	१२
सुखसंतीरण-हसन—	२
अठारह कामावचर चित्त	१८
प्रथम-द्वितीय-तृतीय-ध्यान-चतुर्थ-ध्यान—	४४
जोड़	६२
दोमनस्स-वेदना—पटिघ चित्त—	२
उपेक्षा-वेदना—उपेक्षासहगत-चित्त—	५५
कुल ...	१२१

४. सुखं दुक्खं उपेक्खाति तिविधा तत्थ वेदना।
सोमनस्सं दोमनस्समिति भेदेन पञ्चधा॥
सुखमेकत्थ दुक्खञ्च दोमनस्सं द्वयेठितं।
द्वासट्ठिसु सोमनस्सं पञ्चपञ्ञासकेतरा॥

सुख, दुक्ख तथा **उपेक्षा**—यह तीन प्रकार की वेदना **सोमनस्स** तथा **दोमनस्स** भेद से पांच प्रकार की गिनी जाती है। **सुख-वेदना** तथा **दुक्ख वेदना** एक एक चित्त में होती हैं, **दोमनस्स** दो चित्तों में, **सोमनस्स** बासठ चित्तों में, शेष **उपेक्षा वेदना** पचपन चित्तों में।

हेतु संग्रह

५. हेतु-संग्रह में हेतु छः तरह के हैं—लोभ, दोस, मोह, अलोभ, अदोस तथा अमोह।

६. चित्तों में से **पञ्चद्वारावर्जन** (१), **द्विपञ्चविञ्ञाण** (१०), **सम्पटिच्छन** (२), **संतीरण** (३), **वोट्ठपन** (=**मनोद्वारावर्जन**), **हसन** (१)—इस प्रकार ये अठारह चित्त **अहेतुक** हैं। शेष सब इकहत्तर (७१) चित्त **सहेतुक** हैं।

७. **सहेतुक** चित्तों में दो **मोमूह** चित्त **एकहेतुक** हैं, शेष दस **अकुशल चित्त** और बारह **ज्ञान-विप्रयुक्त कामावचर शोभन चित्त**, ये कुल **द्विहेतुक** हैं। बारह **ज्ञान-युक्त कामावचर शोभन** तथा पैंतीस (३५) **महग्गत-लोकुत्तर चित्त**, कुल सैंतालीस चित्त **त्रिहेतुक** चित्त हैं।

८. लोभो दोसो च मोहो च हेतू अकुसला तयो।
अलोभादोसामोहा च कुसलाब्याकता तथा॥
अहेतुकट्ठारसेकहेतुका द्वे दुवीसति।
द्विहेतुका मता सत्तचत्तालीस तिहेतुका॥

[लोभ, द्वेष तथा मोह ये तीन अकुशल हेतु-हैं। अलोभ, अद्वेष तथा अमोह जब कुशल-चित्तों के साथ सम्प्रयुक्त होते हैं तो कुशल-हेतु कहलाते हैं और जब क्रिया-चित्तों के साथ सम्प्रयुक्त होते हैं तो अव्याकृत कहलाते हैं।

अट्ठारह चित्त **अहेतुक** हैं, दो चित्त **एकहेतुक** हैं, बाइस चित्त **द्वि-हेतुक** हैं, शेष सैंतालीस चित्त **तिहेतुक** हैं।]

कृत्य संग्रह

९. चित्त उत्पत्ति के कृत्य चौदह प्रकार के होते हैं—(१) **पटिसन्धि**, (२) **भवंग**, (३) **आवर्जन**, (४) **दस्सन**, (५) **सवन**, (६) **घायन**, (७) **सायन**, (८) **फुसन**, (९) **सम्पटिछन**, (१०) **सन्तीरण** (११) **वोट्ठपन**, (१२) **जवन**, (१३) **तदारम्मण** (१४) **चुति**।

चित्त-उत्पत्ति के इन कृत्यों के दस स्थान हैं—(१) **पटिसन्धि किच्चट्ठान**, (२) **भवङ्ग किच्चट्ठान**, (३) **आवज्जनठान** (४)

द्विपञ्चविञ्ञाणट्ठा, (५) **सम्पटिच्छनाट्ठानं** (६) **सन्तीरणाट्ठानं** (७) **वोट्ठपनट्ठानं**, (८) **जवन किच्चट्ठानं**, (९) **तदारुम्मण किच्चट्ठानं**, (१०) **चुतिकिच्चट्ठानं**।

एक भव(=जन्म) को दूसरे भव (=जन्म) से जो जोड़ना है वही **पटिसन्धि** है। पैदा होने पर सर्व प्रथम उत्पन्न होनेवाला चित्त **पटिसन्धि चित्त** कहलाता है।

भव का अङ्ग **भवंग**। आयुपर्य्यन्त चलते रहने वाला चित्त **भवङ्ग चित्त** कहलाता है। चित्त-धारा (=सन्तति) का किसी भी नये विषय को अपने सामने लाना अथवा किसी भी नये विषय का चित्त-सन्तति के सामने उपस्थित होना **आवज्जन** कहलाता है। देखना (=**दर्शन**), सुनना (=**श्रवण**) सूंघना (=**घायन**), चखना (=**सायन**), स्पर्श करना (**फुसन**), चक्षु-विज्ञान आदि द्वारा विज्ञात चित्त-विषय का सम्यक् प्रकार से ग्रहण (=**सम्पटिच्छन**), ग्रहीत-विषय का सम्यक् विचार (=**सन्तीरण**), उसी चित्त-विषय की स्थापना (=**वोट्ठपन**), वेग पूर्वक गमन (=**जवन**), भवङ्ग-विषय का आलम्बन न रह जवन-चित्त का आलम्बन बनना (=**तदारम्मण**), भव से मुक्ति, चवन (=**च्युति**)।

(१०) **उपेक्खासहगत सन्तीरण चित्त** (२)+**सहेतुक कामावचर-विपाक** (=महाविपाक ८), **रूपावचर विपाक** तथा **अरूपावचर विपाक** (=रूपारूपविपाक ९)—ये कुल १९ चित्त **पटिसन्धि, भवङ्ग** तथा **च्युति** कृत्यों में काम आते हैं।

पञ्चद्वारावर्जन, मनोद्वारावर्जन—ये दो चित्त आरम्मण-कृत्य (=**आवर्जन कृत्य**) सिद्ध करते हैं।

इसी प्रकार **कुसलाकुसल विपाक** वाले दो चक्षुविज्ञान **दर्शन-कृत्य** साधते हैं, दो श्रोतविज्ञान **श्रवण-कृत्य** साधते हैं, दो घ्राण-विज्ञान घ्राणकृत्य साधते हैं, दो जिह्वा-विज्ञान चखना (=**सायन-कृत्य**) साधते हैं,दो काय-विज्ञान **स्पर्श-कृत्य** साधते हैं, तथा दो सम्पटिच्छन **सम्पटिच्छन-कृत्य** साधते हैं। तीनों **विपाकाहेतुक मनोविञ्ञाण धातु, संतीरण-कृत्य** साधते हैं। **मनो-**

द्वारावर्जन ही **पञ्चद्वारावर्जन चित्त** में **वोट्ठपन कृत्य** साधता है। **पञ्चद्वारावर्जन** तथा **मनोद्वारावर्जन** के रहित शेष कुशलाकुशल फल, क्रिया पचपन चित्त **जवन-कृत्य** साधते हैं। **महाविपाक** (=**सहेतुककामावचर विपाक**) ८+**संतीरण** (३) कुल ११ चित्त **तदारम्मण-कृत्य** साधते हैं।

११- चित्तों में से **उपेक्षासहगत संतीरण** चित्त (२) **पटिसन्धि, भवङ्ग, च्युति, तदारम्मण** तथा **संतीरण**—इन पांच कृत्यों को सिद्ध करते हैं। **महाविपाक** (=सहेतुक कामावचर विपाक) ८ **पटिसन्धि, भवङ्ग, च्युति, तदारम्मण,** ये चार कृत्य सिद्ध करते हैं। **महग्गत विपाक** (=रूपावचर विपाक५+अरूपावचर विपाक) ९ **पटिसन्धि, भवङ्ग** तथा **च्युति** तीन कृत्य सिद्ध करते हैं। **सोमनस्स सहगत संतीरण** चित्त **संतीरण** तथा **तदारम्मण** दो कृत्य सिद्ध करते हैं। उसी प्रकार **वोट्ठपन, वोट्ठपन** तथा **आवर्जन**—ये दो कृत्य सिद्ध करते हैं। शेष (पूर्वोक्त ५५) **जवन** (कृत्य करने वाले) चित्त+**पञ्च द्वारा वर्जन** (दो)+**सम्पटिच्छन चित्त** (१)+**द्विपञ्चविञ्ञाण** (१०)—ये सब यथा सम्भव एक एक कृत्य ही सिद्ध करते हैं।

१२. पटिसन्धादयो नाम किच्चभेदेन चुद्दस।
दसधा ठानभेदेन चित्तुप्पादा पकासिता॥
अट्ठसट्ठि तथा द्वे च नवट्ठ द्वे यथाक्कमं।
एक-द्वि-ति-चतु-पञ्चकिच्चट्ठानानि निद्दिसे॥

[कृत्य-भेद से **पटिसन्धि** आदि चौदह तथा स्थान भेद से **पटिसन्धि-कृत्य स्थान** आदि दस **चित्तुत्पाद** कहे गये हैं। अड़सठ चित्तों का एक एक कृत्य है तथा एक ही एक स्थान है। **सोमनस्स सहगत संतीरण चित्त** तथा **वोट्ठपन चित्त** इन दो चित्तों के दो ही कृत्य हैं तथा दो ही स्थान हैं। **रूपावचर+अरूपावचर विपाक** ९ चित्तों के तीन कृत्य तथा तीन स्थान। **कामावचर सहेतुक विपाक चित्तों** के चार कृत्य तथा चार स्थान। **उपेक्षा सहगत संतीरण चित्तों** के पांच कृत्य तथा पांच स्थान कहे गये हैं।]

द्वार संग्रह

१३. द्वार-संग्रह में **चक्षु-द्वार, श्रोत्र-द्वार, घ्राण-द्वार, जिह्वा-द्वार, काय-द्वार** तथा **मनोद्वार**—ये छः प्रकार के द्वार संग्रहीत होते हैं।

१४. चक्षु ही चक्षु-द्वार है, श्रोत्र आदि श्रोत्र-द्वार हैं, मनोद्वार **भवङ्ग (-चित्त)** को ही कहते हैं।

१५. **पञ्चद्वारावर्चन** (१)+**चक्षुविज्ञान** (२)+**सम्पटिच्छन चित्त** (२)+**संतीरण चित्त** (३)+**वोट्ठपन चित्त** (१)+**अकुसल चित्त** (१२) +**हसितुप्पाद चित्त** (१)+**सहेतुक कामावचर** चित्तों में से आठ **कुशल चित्त** तथा आठ **क्रिया चित्त**(=१६)+(**सहेतुक कामावचर विपाक** ८+**संतीरण चित्त** ३=) ११ **तदारम्मण चित्तों** में से पूर्वोक्त ३ **संतीरण चित्त** छोड़ कर शेष ८ चित्त। इस प्रकार ये कुल छयालीस चित्त हुए। ये छयालीस चित्त यथायोग्य क्रम से चक्षु-द्वार में उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार **पंचद्वारा वर्जन** १+**श्रोत्र विज्ञान**(१)आदि के क्रम से श्रोत्र-द्वार आदि में भी छयालीस चित्त ही होते हैं। इस तरह चक्षु द्वार आदि पांच द्वारों में ५४ **कामावचर** चित्त ही होते हैं।

१६. **मनोद्वार** में **मनोद्वारावर्जन** (१) पूर्वोक्त क्रम से **जवन चित्त** (५५) **तदारम्मण चित्त** ११=कुल सड़सठ चित्त होते हैं।

पटिसन्धिचित्त १९ (दे० ३।१०) भवङ्ग रूप से प्रवर्तित होते हैं। **भवङ्ग** कहते हैं **मनोद्वार** को। द्वार द्वार के रूप में प्रवर्तित नहीं होता। इसलिये ये १९ चित्त **पटिसन्धि-भवङ्ग-च्युति** रूप से **द्वार-विमुक्त** हैं।

१७. उन में से **द्विपञ्च विज्ञान** (१०)+**महग्गत** लोकुत्तर जवन चित्त (२६) यथायोग्य **एक द्वारिक** चित्त ही हैं। **द्विपञ्च-विज्ञान-चित्त** चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय-द्वार में ही प्रवर्तित होने से **एक-द्वारिक**, उसी प्रकार **महग्गत-लोकुत्तर जवन-चित्त** भी **मनोद्वार** में ही प्रवर्तित होने से **एक-द्वारिक**। **पञ्चद्वारावर्जन** (१) तथा दो सम्पटिच्छवचित्त—तीन मनोधातु पञ्चद्वारिक हैं। सुख सन्तीरण (१)+वोट्ठपन (१)+

कामावचर जवन चित्त (२९) छः-द्वारिक हैं। उपेक्षा सहगत-सन्तीरण (२)+महाविपाक चित्त (८) छः-द्वारिक हैं। ये दस चित्त जब पटिसन्धि रूप से प्रवर्तित होते हैं तब द्वार-विमुक्त भी होते हैं। **महग्गगत विपाक** चित्त तो द्वार-मुक्त ही होते हैं।

१८. एक द्वारिकचित्तानि पञ्च छ द्वारिकानि च।
छ द्वारिकविमुत्तानि विमुत्तानि च सब्बथा॥
छत्तिंसति तथा तीणि एकतिंस यथाक्कमं।
दसधा नवधा चेति पञ्चधा परिदीपये॥

[द्विपञ्च विज्ञान (१०)+महग्गत कुशल-क्रिया (१८)+लोकुत्तर मार्ग-फल (८)=३६ ये कुल **एक द्वारिक** हैं। **पञ्च द्वारावर्जन** (१) **सम्पटिच्छन चित्त** (२)=३ ये चित्त **पञ्चद्वारिक** हैं। **सोमनस्स सहगत संतीरण** (१)+**वोट्ठपन** (१)+**कामावचर जवन** (२९)=३१ ये चित्त **छः द्वारिक** हैं। इन में से **सन्तीरण** (२)+**कामावचर सहेतुक** (८)—ये दस चित्त जब **पटिसन्धि** रूप से प्रवर्तित होते हैं, तब द्वार-विमुक्त होते हैं। इसलिये ये दस छः द्वारिक भी हैं और द्वार-विमुक्त भी हैं। **महग्गत विपाक चित्त** (९) तो द्वार-विमुक्त ही हैं।

इस प्रकार यहाँ **एकद्वारिक, पञ्च-द्वारिक, छः द्वारिक, छ द्वारिक-द्वार विमुक्त,** तथा **द्वार विमुक्त** ये पाँच तरह का संग्रह समझना चाहिये।]

आरम्मण संग्रह

(१९) रूपारम्मणं, सद्दारम्मणं, गन्धारम्मणं, रसारम्मणं, फोट्ठब्बारम्मणं, धम्मारम्मणं—ये छः प्रकार के आरम्मण (=आलम्बण) आरम्मण-संग्रह में संग्रहीत होते हैं।

(२०) रूप को ही रूपारम्मण कहते हैं, उसी प्रकार शब्द आदि को शब्दारम्मन। धम्मारम्मण (=चित्त के विषय) छः तरह से संग्रहीत होते

हैं—(१) चक्षु-प्रासाद आदि पाँच-प्रासाद, (२) सोलह प्रकार के सूक्ष्म-रूप, (३) चित्त, (४) चैतसिक, (५) निब्बाण, (६) प्रज्ञप्ति।

(२१) जितने **चक्षु-द्वारिक चित्त** उन सबका **रूप** ही आलम्बन है, और वह वर्तमान कालिक ही होता है। उसी प्रकार **श्रोत्रद्वारिक** चित्त आदि के भी **शब्द** आदि आलम्बन होते हैं, तथा वे वर्तमानकालिक ही होते हैं।

मनोद्वारिक चित्तों का छः प्रकार का **रूपारम्मण** वर्तमानकालिक, भूतकालिक, भविष्यत्कालिक तथा कालविमुक्त यथायोग्य आलम्बन होता है। मनोद्वारिक चित्तों का वर्तमानकालिक रूप आदि कैसे आलम्बन होता है? योगी दूसरे के चित्त का हाल जानने के समय दूसरे का हृदय-रूप देखता है, दिव्य श्रोत्र धातु से शब्द सुनता है। इस प्रकार **वर्तमानकालिक** तथा **भविष्यकालिक** रूप आदि आरम्मण योगी के मनोद्वार के सम्मुख उपस्थित होते हैं। भूतकालिक तो सभी को होते ही हैं। कालविमुक्त से आशय है निर्वाण से तथा प्रज्ञप्ति से। इनमें से निर्वाण केवल स्रोतापन्न आदि आर्य-व्यक्तियों का आलम्बन होता है, प्रज्ञप्ति तो सभी का।

पटिसन्धि-भवङ्ग-च्युति चित्त नामक १९ द्वारविमुक्त चित्तों का (५, १०–१७) यथासम्भव **बहुधा** भवान्तर में छ द्वार-गृहीत, वर्तमान-कालिक, भूतकालिक, प्रज्ञप्ति अथवा कर्म, कर्म-निमित्त तथा गतिनिमित्त (५–३५, ३८) आरम्मण होते हैं।

'बहुधा' किसलिये? क्योंकि **असञ्ञी भव** से च्युत होकर अन्य किसी भव में उत्पन्न होने वाले प्राणियों की **च्युति-काल** में कर्म-कर्म-निमित्त-गति-निमित्त की सम्भावना नहीं। इसी प्रकार **अरूपावचर** भव से **कामावचर** भव में उत्पन्न प्राणियों का **गति-निमित्त** नहीं होता।

२२. इनमें **चक्षुविज्ञान** आदि का यथाक्रम रूप आदि एक एक आरम्मण ही होता है। **पञ्चद्वारावर्जन** (२) + **सम्पटिच्छन** (१)—ये तीन मनो-धातु रूप आदि पाँच आरम्मण वाले होते हैं। **अकुशल विपाक संतीरण** (१) + **कुशल विपाक संतीरण** (२) + **सहेतुक विपाक** (८)—ये इन ग्यारह चित्तों तथा हसन-चित्त के कामावचर ही आरम्मण होते हैं।

अकुशल चित्त तथा **ज्ञान विप्रयुक्त कामावचर जवन चित्तों** के लोकोत्तर-वर्जित सभी धर्म आरम्मण होते हैं।

प्रश्न होता है कुशल कर्म अकुशल-कर्म का आरम्मण कैसे होता है? पट्ठान में कहा है "कुशल-धर्म अकुशल-धर्म का आरम्मण-प्रत्यय से प्रत्यय होता है। (आदमी) दान देकर, शील का पालन कर, उपोसथ-कर्म करके उसका स्वाद लेता है, उसका अभिनन्दन करता है, उसके कारण राग उत्पन्न होता है, (मिथ्या) दृष्टि उत्पन्न होती है, विचिकित्सा उत्पन्न होती है, उद्धतपन उत्पन्न होता है, दौर्मनस्य उत्पन्न होता है...ध्यान से उठकर ध्यान का स्वाद लेता है, उसका अभिनन्दन करता है, उसके कारण राग उत्पन्न होता है, दृष्टि उत्पन्न होती है, विचिकित्सा उत्पन्न होती है, उद्धतपन उत्पन्न होता है, ध्यान का नाश होने पर पश्चात्ताप के कारण दौर्मनस्य उत्पन्न होता है।"

ज्ञानसम्प्रयुक्त कामावचर कुशल चित्तों और पञ्चम ज्ञान नामक अभिज्ञा कुशल—इन चित्तों के अर्हत-मार्ग-फल वर्जित शेष सभी धर्म (=विषय) आरम्मण होते हैं।

ज्ञान सम्प्रयुक्त कामावचा क्रिया चित्त अर्हत्त अभिञ्ञा (=क्रियाभिञ्ञा) तथा **वोट्ठपन** (=अहेतुकक्रिया मनोविज्ञान धातु)—इन चित्तों के सभी तरह से सभी धर्म चित्तारम्मण होते हैं।

आरुप्य चित्तों में द्वितीय तथा चतुर्थ चित्तों के **चारों अरूपी-स्कन्ध** (=**वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान**) आरम्मण होते हैं।

शेष सभी २१ **महग्गत चित्तों** की **कसिण** आदि **प्रज्ञप्तियाँ** ही आरम्मण होती हैं।

लोकुत्तर चित्तों का **निर्वाण** आरम्मण होता है।*

२३. पञ्चवीस परित्तम्हि छ चित्तानि महग्गते।
एकवीसति वोहारे अट्ठ निब्बान गोचरे॥

वीसानुत्तरमुत्तम्हि अग्गमग्गफलुज्झिते।
पञ्च सबत्थ छच्चेति सत्तधा तत्थ सङ्गहो।।

[**कामावचर विपाकचित्त** (२३) + **पञ्चद्वारावर्जन** (१) + **हसितुप्पाद चित्त** (१)—इन पच्चीस चित्तों के **कामावचर** आरम्मण होते हैं। द्वितीय तथा चतुर्थ आरूप्य ध्यानों के कुसल-विपाक-क्रिया रूप से छः चित्तों के आरम्मण **महग्गत** (=चारों अरूपी स्कन्ध) होते हैं। शेष **रूपावचर अरूपावचर** इक्कीस चित्त व्यवहार (=प्रज्ञप्ति धर्म) में प्रवर्तित होते हैं। आठ चित्तों का **निर्वाण** ही आरम्मण है। **अकुशल चित्त** (१२) तथा ञाण-**विप्पयुत्त कामावचर जवन चित्त** (८) ये बीस चित्त लोकुत्तर-वर्जित आरम्मणों में प्रवर्तित होते हैं। **ज्ञान सम्प्रयुक्त कुशल चित्त** (४) + **कुसलाभिञ्ञा चित्त** (१) ये पाँच चित्त अर्हत्व-मार्ग-फल वर्जित शेष आरम्मणों में प्रवर्तित होते हैं। **ञाणसम्प्रयुक्त क्रिया चित्त** (४) + **क्रियाभिञ्ञाचित्त** (१) + **अहेतुक क्रियामनोविञ्ञान धातु चित्त** (=मनोद्वारावर्जन) १ ये छः चित्त सर्वत्र सभी आरम्मणों में प्रवर्तित होते हैं।]

वत्थु सङ्गहो

२४. चक्षु-श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा **हृदय-वस्तु** ये छः **वस्तुयें** कहलाती हैं। **काम-लोक** में ये सभी रहती हैं। **रूप-लोक** में घ्राण आदि तीन नहीं रहती हैं। **अरूप-लोक** में इनमें से कोई एक भी वस्तु नहीं होती।

इनमें चित्त-चैतसिक धर्म बसते हैं, इसलिये इन्हें वास्तु (=वस्तु) कहते हैं। इनमें जो चक्षु आदि हैं वे पाँच पाँच **विज्ञान-धातुओं** के वास्तव्य हैं, हृदय अर्थात् **मनो-धातु मनोविज्ञान धातु** का निवासस्थान है।

(२५) पाँच विज्ञान धातु निश्चय से क्रमशः पाञ्च प्रसाद-वस्तुओं के ही आश्रय से प्रवर्तित होते हैं।

पञ्चद्वारावर्जन-सम्पटिच्छन नामक **मनो धातु** हृदय के ही आश्रय से प्रवर्तित होता है। **संतीरण, महाविपाकपटिघ-द्वय, प्रथम मार्ग, हसन** तथा

रूपावचर जो **मनोविज्ञानधातु** कहलाते हैं वे हृदय के ही आश्रय से प्रवर्तित होते हैं। शेष **कामावचर कुसल** (८) + **अरूपावचर** (४) + **प्रथम मार्ग** विरहित **लोकुत्तर** (३) = ये पन्द्रह कुशल + **पटिघद्वय** विरहितदस **अकुशल** + **वोट्ठपन** (= मनोद्वारावर्जन) के साथ **कामावचर अरूपावचर क्रिया चित्त** (१३) + **लोकुत्तर फल चित्त** (४)—ये कुल ४२ चित्त हृदय-वस्तु के आश्रय से वा अनाश्रय से उत्पन्न होते हैं। **आरूप्प विपाक** की अरूप-भव में हृदय से अनाश्रित ही उत्पत्ति होती है।

२६. छवत्थुं निस्सिता कामे सत्त रूपे चतुब्बिधा।
तिवत्थुं निस्सिता रूपे धात्वेकानिस्सिता मता॥
तेचत्तालीस निस्साय द्वेचत्तालीस जायरे।
निस्साय च अनिस्साय पकारूप्पा अनिस्सिता॥

[**कामावचर लोक** में छ वस्तुओं (= वास्तुओं) के आश्रय से **चक्षु विज्ञान धातु** आदि सात धातु उत्पन्न होते हैं। **रूपावचर भव** में तीन वस्तुओं (= वास्तुओं) के आश्रय से चार धातु उत्पन्न होते हैं। **अरूप भव** में एक **मनोविज्ञान धातु** किसी भी वास्तु के आश्रय से उत्पन्न नहीं होती।

द्विपञ्चविञ्ञाणानि (१०) + **मनोधातु** (३) + **सन्तीरण** (३) + **महाविपाक** (८) + **पटिघचित्त** (२) + **प्रथम मार्ग चित्त** १ + **हसितुप्पाद** (१) + **रूपावचर** (१५)—ये तितालीस चित्त हृदय वस्तु के आश्रय से ही उत्पन्न होते हैं। **कामावचर कुसल** (८) + **अरूपावचर** (४) + **प्रथम मार्ग वर्जित लोकुत्तर** (३) **पटिघद्वय वर्जित अकुशल** (१०) **वोट्ठपन** (मनो-द्वारावर्जन) के साथ **कामावचर अरूपावचर क्रिया चित्त** (१३) + **लोकुत्तर** फल चित्त (४)—ये ४२ चित्त हृदय-वस्तु के आश्रय से उत्पन्न होते हैं। ऐसा काम भव में तथा रूप भव में ही होता है। अरूप-भव में ये हृदय-वस्तु से अनाश्रित उत्पन्न होतेहैं।

आरूप विपाक चित्त (४) **हृदय-वस्तु** से अनाश्रित ही उत्पन्न होते हैं।]

चतुर्थ परिच्छेद

वीथि संग्रह विभाग

चित्तुप्पादनमिच्चेवं, कत्वा सङ्गहमुत्तरं।
भूमिपुग्गलभेदेन पुब्बापरनियामितं॥
पवत्तिसङ्गहं नाम पटिसन्धिपवत्तियं।
पवक्खामि समासेन यथासम्भवतो कथं॥

[चित्त (तथा चैतसिकों) की उत्पत्ति का संग्रह करके इससे आगे **भूमि-भेद** तथा **पुद्गल-भेद** से (४।२१–२५) पूर्व (चित्तों) तथा अपर (चित्तों) से सम्बन्धित **प्रतिसन्धि** तथा पवत्ति (=प्रवृत्ति) का वर्णन करने वाले प्रवत्ति-सङ्गह को यथासम्भव संक्षेप में कहता हूँ। कैसे ?]

२. वीथि (=मार्ग, पथ) संग्रह के अन्तर्गत छः वस्तुयें, छः द्वार, छः आरम्मण, छः विज्ञान, छः वीथियाँ, छः कार की विषय-प्रवृत्ति—इस तरह छः छक्के आते हैं।

३. जो वीथि मुक्त (—चित्त) हैं उनकी **कर्म**, **कर्म-निमित्त** तथा **गति निमित्त** क्रम से तीन तरह से विषय-प्रवृत्ति होती है।

४. छः छक्कों में से वस्तु (३।२४–२६), द्वार (३।१३–१८) तथा आरम्मण (३।१९–२३) पहले कहे ही गये हैं।

५. चक्षु-विज्ञान, श्रोत्र-विज्ञान, घ्राण-विज्ञान, जिह्वा-विज्ञान, काय-विज्ञान, तथा मनोविज्ञान—ये छः विज्ञान हैं।

(६) **चक्षुद्वार वीथि**, **श्रोतद्वार वीथि**, **घ्राणद्वार विथि**, **जिह्वाद्वार वीथि**, **काय-द्वार वीथि** तथा **मनोद्वार वीथि**—ये छः द्वार के रूप से

या चक्षुविज्ञान वीथि, श्रोत्रविज्ञान वीथि, घ्राणविज्ञान वीथि, जिह्वा-विज्ञान वीथि, काय विज्ञान वीथि, तथा मनोविज्ञान वीथि विज्ञान के रूप से द्वार-प्राप्त (=द्वार-उत्पन्न) चित्त-प्रवृत्तियाँ जाननी चाहिये।

वीथी का मतलब है चित्त-परम्परा। वह जिस जिस द्वार में प्रवर्तित होती है, उस उस के नाम से, अथवा उस उस (द्वार के) विज्ञान के नाम से जानी जाती है।

(७) पञ्च-द्वारों में **अतिमहन्त, महन्त, परित्त** (=सीमित), **अति परित्त** (=अति सीमित) और मनोद्वार में **विभूत** (=सुप्रकट, तथा **अविभूत** (=अप्रकट) इस प्रकार कुल छः तरह की विषय - प्रवृत्ति जाननी चाहिये।

पञ्च-द्वार वीथी

८. कैसे? **उत्पाद, स्थिति, भंग** के हिसाब से तीन क्षण इकट्ठे मिलकर एक **चित्त-क्षण** कहलाते हैं। १७ **चित्त-क्षण** एक एक **'रूप'** धर्म की आयु जाननी चाहिये।

चाहे एक चित्त-क्षण व्यतीत हुआ हो, चाहे अनेक चित्त-क्षण व्यतीत हुए हों, किन्तु जो स्थिति-प्राप्त पाँच आरम्मण (रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पृष्टव्य) ही पाँच द्वारों (चक्षु श्रोत्र घ्राण, जिह्वा, स्पृष्टव्य) के गोचर होते हैं। इसलिये यदि ऐसा रूपारम्मण चक्षु के गोचर होता है जिसकी आयु अभी एक चित्त-क्षण ही हुई हो, तो **भवङ्ग-चलन** तथा **भवङ्ग-उपच्छेद** के रूप में भवङ्ग का दो बार चलन हो जाने पर **भवङ्गस्रोत** चालित होकर उसी **रूपारम्मण** का **आवर्जन** (=सम्मुखीकरण) करते हुए **पञ्चद्वारा-वर्जन चित्त** उत्पन्न होकर निरोध को प्राप्त होता है। इसके बाद उसी रूप को देखते रहने से चक्षु-विज्ञान, **सम्पटिच्छन** (=सम्यक् ग्रहण) करने से **सम्पटिच्छन-चित्त, सन्तीरण** (=सम्यक् विचार) करने से **संतीरण-चित्त, वोट्ठपन** (=सम्यक् स्थापन) करने से **वोट्ठपन-चित्त** यथाक्रम उत्पन्न होकर निरोध को प्राप्त होता है। इसके बाद उन्नत्तीस (२९) **कामावचर जवन चित्तों** में जो कोई भी चित्त प्रत्यय-लब्ध होता है, वह **प्रायः** सात बार

वेग से गमन (=जवन) करता है। मूर्छा आदि के समय पर पाँच या छः 'जवन' करता है, इसीलिये 'प्रायः' कहा गया। **जवन** का अनुबन्ध (=अनुगमन) करने वाले दो **तदारम्मण विपाक** (चित्त) यथायोग्य प्रवर्तित होते हैं। इसके बाद भवङ्ग-पात।

वीथि-प्रवृत्ति को सरलता से समझाने के लिये यह उपमा दी जाती है। एक आदमी फलदार आम्र वृक्ष के नीचे सिर ढक कर सो रहा है। पास गिरे आम्र-फल का शब्द सुनकर जागता है। सिर पर से कपड़ा हटाता है। आँख खोलता है। देखता है। उसे लेता है। मलकर, सूँघकर, पका जान खाता है। मुँह में पड़े रस को लार सहित निगल कर फिर उसी तरह सो जाता है। आदमी के निद्रित रहने के समय के समान है **भवङ्ग-समय**। फल के गिरने के समय जैसा है **आरम्मण** का 'प्रसाद' टकराने का समय। उस (आम फल) के गिरने के शब्द से जाग उठने का समय है **आवर्जन-समय**। आँख खोलकर देखने जैसा है **चक्षु-विज्ञान** के प्रवर्तित होने का समय। ग्रहण करने जैसा है **सम्पटिच्छन काल**। मलने के समय जैसा है **सन्तीरण-काल**। सूँघने जैसा है **वोट्ठपन काल**। परिभोग (=खाने) जैसा है **जवन-काल**। मुख में पड़े रस को लार के साथ निगल जाने जैसा है **तदारम्मण-काल**। दुबारा सो जाने जैसा है फिर **भवङ्ग-पात**।

पञ्चद्वार वीथि

अभिधम्मत्थ सङ्गह के अनुसार—

	वीथि	(अभिधर्म के अनुसार)
अतीत भवङ्ग	०००	चत्तारो अरूपिनो विपाक खन्धा
भवङ्ग चलन	०००	” ” ”
भवङ्ग उपच्छेद	०००	” ” ”
(१) पञ्चद्वारावर्जन	०००	क्रिया मनो धातु
(१०) चक्खुविञ्जाण आदि	०००	चक्खु विञ्जाण आदि

अभिधम्मत्थ सङ्गह के अनुसार—

वीथि (अभिधर्म के अनुसार)

(२) सम्पटिच्छन ००० विपाक मनो धातु

(३) सन्तीरण ००० अहेतुक विपाक मनो विञ्ञाणधातु

(१) वोट्ठपन ००० अहेतुक क्रिया मनो विञ्ञाण धातु।

००० ००० ००० ००० ००० ००० ०००

२८ कामावचरचित्तों के सात 'जवन'

उपेक्षा सहगत कामावचर कुसल धर्म या अकुसलधर्म, वा क्रिया अव्याकृत धर्म

दो तदारम्मण ००० ००० चारों अरूपी विपाक स्कन्ध।

९. ये चौदह **वीथि-चित्तुत्पाद,** दो **भवङ्ग-चलन** तथा पूर्व वा अतीत का एक **चित्तक्षण,** इस प्रकार सत्रह **चित्त-क्षणों** की पूर्ति होकर, इसके बाद, **निरोध** को प्राप्त होता है। यह आरम्मण **अतिमहन्त** आरम्मण कहलाता

है। जहाँ वह होता है वहाँ **'जवन'** के ही अन्त में **'भवङ्गपात'** होता है। वहाँ **'तदारम्मण-उत्पाद'** नहीं होता। जब 'चित्त-विषय' के चित्त के गोचर होने पर तीन चित्त-क्षण गुजर जाते हैं, तब उस **'आरम्मण'** की आयु **'जवन'** के अन्त में ही समाप्त होती है। जो 'जवन' उत्पाद तक भी असमर्थ होता है, वह भूतकालिक आरम्मण **'परित्त'** कहलाता है। जब आरम्मण के चित्त के सम्मुखी-भूत होने में आठ या नौ चित्त-क्षण बीतते हैं, तब वह आरम्मण **'परित्त'** होता है। जहाँ वह होता है वहाँ **'जवन'** की भी उत्पत्ति, न होकर दो बार **'वोट्ठपन'** ही होता है. उसके बाद **'भवङ्ग-पात'**। जो **'वोट्ठपन-उत्पाद'** तक भी असमर्थ होता है, वह भूतकालिक, निरोध के अति समीप आरम्मण **'अति-परित्त'** आरम्मण कहलाता है। जहाँ वह होता है वहाँ **'भवङ्ग-चलन'** ही होता है, वहाँ **'वीथि चित्तुत्पाद'** नहीं होता। इस प्रकार जैसे चक्षु-द्वार में वैसे ही श्रोत्र-द्वार आदि सभी पञ्चद्वारों में **तदारम्मण, जवन, वोट्ठपन** तथा **मोघ-वार** कही जाने वाली यथाक्रम आरम्मण बनने वाली चार प्रकार की विषय-प्रवृत्ति जाननी चाहिये। जब एक भी चित्त-वीथि की उत्पत्ति नहीं होती तो वह 'मोघवार' कहलाता है।

१०. वीथिचित्तानि सत्तेव चित्तुप्पादा चतुद्दस।
चतुपञ्ञास वित्थारा पञ्च द्वारे यथारहं॥

[**पञ्चद्वारावर्जन, चक्षुविज्ञान** आदि एक, **सम्पटिच्छन, सन्तीरण, वोट्ठपन, जवन** तथा **तदरम्मण** ये सात प्रकार के **वीथि-चित्त** हैं। उन्हीं को यदि सात **'जवन'** और दो **'तदारम्मणों'** के हिसाब से गिनती की जाय, तो वह चौदह **'चित्तुत्पाद'** होते हैं। अधिक विस्तार से कहा जाय तो ५४ कामावचर चित्त (१।१६) पञ्चद्वारों में यथायोग्य प्रवर्तित होते हैं।]

यह पञ्चद्वारों में वीथि-चित्त-प्रवृत्ति-क्रम है।

११. यदि मनोद्वार के सम्मुख कोई सम्यक् प्रकट (=**विभूत**) आरम्मण होता है, तो उससे **भवङ्ग-चलन, मनोद्वारावर्जन** तथा **जवन** के

अन्त में **तदारम्मण (वि) पाक** प्रवर्तित होते हैं। इससे आगे **भवङ्ग-पात**।

यदि **आरम्मण** सम्यक् प्रकट न हो अर्थात् **अविभूत** हो तो **जवन** के अन्त में **भवङ्गपात** ही होता है, **तदारम्मण-उत्पाद** नहीं होता।

१२. वीथिचित्तानि तीणेव चित्तुप्पादा दसेरिता।
विल्थारेन पनेत्थेक चत्तालीस विभावये।।

[इस वीथि में **मनोद्वारावर्जन, जवन** तथा **तदारम्मण** ये तीन ही चित्त प्रवर्तित होते हैं। विस्तार से कहना हो तो **कामावचर** के **कुसलाकुसल क्रिया जवन चित्त** २९ + तीन **सन्तीरण** और आठ **सहेतुक कामावचर विपाक** अर्थात् ११ तदारम्मण+एक **मनोद्वारावर्जन** इस प्रकार **मनोद्वार कामावचर वीथि** में ४१ चित्त प्रवर्तित होते हैं।]

यह परित्त जवन-वार है।

अप्पना वीथि

१३. अर्पणा का मतलब है श्रेष्ठतर=बलवानतर समाधि। **अर्पणा जवन-वार** में **'विभूत' 'अविभूत'** की गुंजायश नहीं। यहाँ केवल **'अति विभूत'** आरम्मण की ही गुंजायश है। इसी प्रकार **तदारम्मण-उत्पाद** की भी गुंजायश नहीं। 'अर्पणा' में चार **ज्ञान-सम्प्रयुक्त** कुशल चित्त+चार **क्रिया-चित्त**, इस प्रकार आठ **कामावचर जवन-चित्तों** में से किसी एक (चित्त) में **अर्पणा** का **परिकर्म**, जो कि **'उपचार', 'अनुलोम'** तथा **'गोत्र-भू'** कहलाता है, चार बार वा तीन बार यथाक्रम उत्पन्न होकर, निरुद्ध होने के अनन्तर यथायोग्य चतुर्थ वा पञ्चम, (**महग्गत जवन** १८+**लोकुत्तर जवन**)=२६ **महग्गत लोकुत्तर जवनों में चित्तप्रयोग साधन** (=अभिनीहार) के अनुसार जो कुछ भी **'जवन' अर्पणावीथि** में उतरता है। इससे आगे **'अर्पणा-जवन'** के अन्त में **भवङ्ग-पात** ही होता है।

१४. इसकी आशा रखनी चाहिये कि **सोमनस्स-युक्त जवन** के

कामावचरा मनो द्वार वीथि

	वीथि
अतीत भवङ्गं	ooo
भवङ्ग चलनं	ooo
भवङ्ग उपच्छेदो	ooo
मनोद्वारावर्जन	ooo
सत्तजवनवसेन एकूनतिस कामावचर जवनचित्तानि	ooo ooo ooo ooo ooo
द्वे तदारम्मणानि	ooo ooo

महग्गता वीथि (पठमका अप्पना)

	वीथि
अतीत भवङ्गं	०००
भवङ्ग चलनं	०००
भवङ्ग उपच्छेदो	०००
मनोद्वारावर्जन	०००
परिकम्मं	०००
उपचार	०००
अनुलोमं	०००
गोत्रभू	०००
अप्पना	०००
भवङ्गपातो	०००

अनन्तर **'अर्पणा'** भी सोमनस्स युक्त ही होगी। इसी प्रकार **उपेक्षा युक्त 'जवन'** के अनन्तर उपेक्षा-युक्त ही। और वहाँ भी **कुसल 'जवन'** के बाद कुसल जवन नीचे के (**स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी**) तीनों फलों को ही प्राप्त होता है। **'क्रियाजवनों'** के अनन्तर **'क्रिया-जवन'** अर्हत्व फल को भी।

१५. द्वत्तिंस सुखपुञ्ञम्हा द्वादसोपेक्खका परं।
सुखितक्रियतो अट्ठ छ सम्भोन्ति उपेक्खका॥
पुथुज्जनानं सेक्खानं कामपुञ्ञातिहेतुतो।
तिहेतुकामक्रियतो वीतरागानमप्पना॥

[दो **सोमनस्ससहगत तिहेतुक कामावचर कुसल चित्तों** (सुखपुञ्ञ) से चार (कुसलज्झान चित्त+२८ लोकुत्तर सेखज्झान युक्त चित्त अर्थात् बत्तीस **अर्पणा चित्त** उत्पन्न होते हैं। फिर दो **उपेक्खा सहगत तिहेतुक कामावचर कुसल चित्तों** से एक **पञ्चमध्यानिक,** चार **अरूपावचरकुसल** तथा **पञ्चमध्यान सम्प्रयुक्त** सात **लोकुत्तर सेख-चित्त** अर्थात्, कुल बारह **अर्पणा-चित्त** उत्पन्न होते हैं। दो **सोमनस्स सहगत तिहेतुक कामावचर क्रिया चित्तों** से चार क्रिया-ध्यान तथा चार अर्हत्व-फल सम्प्रयुक्त ध्यान अर्थात् आठ **अर्पणा-चित्त** उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार दो **उपेक्खासहगत तिहेतुक कामावचर क्रिया चित्तों** से, १ क्रियापञ्चम ध्यान+४ अरूपावचर क्रिया ध्यान+१ अर्हत्वफलसम्प्रयुक्त पञ्चम ध्यान—ये छः **अर्पणा चित्त** उत्पन्न होते हैं।

जो शैक्ष पृथक-जन (=कल्याण पृथक-जन) हैं **कामावचर तिहेतुक कुसल चित्त से** अर्पणा होती है, जो बीत-राग हैं, जो अर्हत्व-फल में प्रतिष्ठित हैं उन्हें **कामावचर तिहेतुक क्रिया चित्त से** 'अर्पणा' होती है।]

यह मनोद्वार में वीथि चित्त-प्रवृत्ति क्रम है।

तदारम्मण नियम

१६. पञ्चद्वार तथा मनोद्वार में सर्वत्र अनिष्टकर आलम्बन होने पर **पञ्चविञ्ञाण सम्पटिच्छन सन्तीरण तदारम्मण** अकुसल विपाक

ही होते हैं। इष्ट आलम्बन होने पर जो **अकुशल-विपाक** होते हैं वे **उपेक्षा युक्त** ही होते हैं। अति इष्ट आलम्बन होने पर **सन्तीरण-तदारम्मण सोमनस्सयुक्त** ही होता है। उसमें से भी **सोमनस्सयुक्त क्रिया जवन** के अन्त में सोमनस्स युक्त ही **तदारम्मण** होते हैं और **उपेक्षा-युक्त क्रिया-जवन** के अन्त में उपेक्षा युक्त ही **तदारम्मण** होते हैं।

१७. **दोमनस्स युक्त जवन** के अन्त में **तदारम्मण** तथा **भवङ्ग** उपेक्षा-युक्त ही होते हैं। इसलिये यदि **सोमनस्स युक्त प्रतिसन्धि** वाले के यहाँ **दोमनस्स युक्त जवन** के अन्त में **तदारम्मण** सम्भव नहीं है, तो जिस किसी पूर्व-परिचित **परित्तारम्मण** को लेकर **उपेक्षा युक्त सन्तीरण** उत्पन्न होता है। आचार्य्यों का मत है कि इसके बाद **भवङ्ग-पात** ही होता है। इसी प्रकार उनका मत है कि जो **कामावचर** प्राणी हैं वे **कामावचर जवन** के अन्त में कामावचर धर्मों के ही आरम्मण बनने पर, **तदारम्मण** उत्पन्न करते हैं।

१८. कामे जवनसत्तारम्मणानं नियमे सति।
विभूतेति महन्ते च तदारम्मणमीरितं॥

[**कामावचर लोक में जवनों** का, सत्वों का तथा आरम्मणों का नियम होने पर **विभूत** तथा **अति-महन्त** आरम्मणों के होने पर **तदारम्मण** कहा गया है।]

जवन नियम

१९. **जवनों** में जो **परित्त** (=सीमित) **जवन-वीथि** है उसमें **कामावचर जवन** सात या छः बार **जवन** करते हैं। मन्द प्रवृत्ति होने पर, जैसे मरने के समय, मूर्छा के समय तथा अति तरुण होने पर पांच ही बार। यह भी कहा जाता है कि भगवान् के **यमक पाटिहारिय** आदि करने के समय हलकी-प्रवृत्ति होने के कारण चार या पांच **प्रत्यवेक्षण-चित्त** होते हैं।

जो आरम्भिक-योगाभ्यासी है उसे पहली **अर्पणा** प्राप्त होने

पर **महग्गत-जवन** तथा **अभिञ्ञा जवन** हर समय एक ही बार **जवन** करते हैं। इससे आगे **भवङ्ग-पात**। चारों **स्रोतापन्न** आदि **मार्ग** **एक-चित्त-क्षणिक** हैं, उसके बाद दो तीन **फल-चित्त** यथायोग्य उत्पन्न होते हैं। इसके आगे **भवङ्ग-पात। निरोधसमापत्ति** (=ध्यान) के समय दो बार **चतुर्थ आरूप जवन** 'जवन' करता है, इसके बाद निरोध को स्पर्श करता है। उत्थान-काल में **अनागामिफल** या **अर्हत्व-फल** एक बार उत्पन्न होकर निरोध होने पर **भवङ्ग-पात** ही होता है। **भवङ्ग-स्रोत** की तरह **समापत्ति-वीथि** में भी वीथि नियम नहीं है—इसलिये बहुत बार भी 'जवन' होते हैं।

२०. सत्तक्खत्तुं परित्तानि मग्गाभिञ्ञा सकिं मता।
अवसेसानि लब्भन्ति जवनानि बहूनि पि॥

[**कामावचर जवन** (=परित्त) **सात बार 'जवन'** करते हैं। **चारों मार्ग** तथा **अभिञ्ञा जवन** एक ही बार 'जवन' करते हैं। शेष **अर्पणा 'जवन'** बहुत बार भी **'जवन'** करते हैं।]

पुद्गल-भेद

२१. **ज्ञान-विप्रयुक्त-प्रतिसन्धि** (=द्विहेतुक) तथा **उपेक्षायुक्त अहेतुक मनोविज्ञान धातु प्रतिसन्धि** (=अहेतुक) वालों को **क्रिया 'जवन'** वा **अर्पणा 'जवन'** उत्पन्न नहीं होते। इसी प्रकार मनुष्य-लोक (=सुगति) में **ञाणसम्प्रयुक्त कामावचर विपाक** तदारम्मण रूप से प्रवर्तित नहीं होते। दुर्गति में **ज्ञान-विप्रयुक्त महाविपाक** (=द्विहेतुक कामावचर विपाक) भी तदारम्मण रूप से प्रवर्तित नहीं होते।

२२. **त्रिहेतुक** (=ज्ञान सम्प्रयुक्त प्रतिसन्धि वाले) जनों में से जो **क्षीणास्रव जन** हैं, उनमें कुशलाकुशल **'जवन'** नहीं होते, केवल क्रिया 'जवन' ही होते हैं। इसी प्रकार शैक्ष पृथक् जनों में 'क्रिया' जवन ही होते हैं।

चार **दृष्टिगत सम्प्रयुक्त** तथा एक **विचिकित्सासम्प्रयुक्त 'जवन'**—

ये पांच **'जवन'** शैक्षों में उत्पन्न नहीं होते। **अनागामि पुद्गलों** में पटिघ 'जवन' भी नहीं होते। **लोकुत्तर-जवन** तो 'आर्य' जनों में ही यथायोग्य उत्पन्न होते हैं।

२३. असेक्खानं चतुचत्तालीस सेक्खानमुद्दिसे।
छप्पञ्ञासावसेसानं चतुपञ्ञास सम्भवा॥

[**अशैक्ष** (=अर्हतों) की चित्त-प्रवृत्ति में **अकुशल** १२+**कामावचर महग्गत कुशल** १७+**रूपारूप विपाक**९+**लोकुत्तर** ७=४५ चित्त नहीं होते। **अहेतुक** १८+**कामावचर महग्गत क्रिया चित्त** १७+**कामावचर विपाक**८+**अर्हतफल चित्त** १=४४ चित्त होते हैं। **शैक्षों** की चित्त-प्रवृत्ति में **दृष्टिगत-विचिकित्सा सम्प्रयुक्त पाँच चित्तों** को छोड़कर शेष ७ चित्त+ **हसितुप्पाद चित्त** को छोड़ शेष अहेतुक १७+**क्रिया चित्तों** को छोड़ शेष **कामावचर** १६+**रूपावचर अरूपावचर कुशल**९+**लोकुत्तर** ७=५६ चित्त होते हैं। **स्रोतापन्न, सकृदागामियों** की चित्त-प्रवृत्ति में ५१ तथा **अनागामियों** की चित्तप्रवृत्ति में ४९ चित्त जानने चाहिये। शेष पृथक-जनों की चित्त-प्रवृत्ति में **अकुशल** चित्त १२+**क्रिया चित्तों** को छोड़ शेष **कामावचर** १६+**रूपावचरारूपावचर कुशल**९+**हसितुप्पाद** को छोड़कर शेष **अहेतुक चित्त** १७=५४ चित्त दृष्टिगोचर होते हैं।

भूमि विभागो

२४. **कामावचर** भूमि में ये सभी **वीथि-चित्त** यथायोग्य मिलते हैं। **रूपावचरभूमि में पटिघजवन तदारम्मण** (=पटिघसम्प्रयुक्त २+कामावचर सहेतुक विपाक ८) छोड़कर शेष चित्त मिलते हैं। **अरूपावचर भूमि** में **प्रथम मार्ग चित्त**+**रूपावचर चित्त** +**हसितुप्पाद चित्त**+**अन्तिम** (=हेट्ठिम) **आरूप** चित्तों को छोड़कर शेष चित्त मिलते हैं।

सर्वत्र उस उस प्रसाद-रहित (जैसे जन्मान्ध आदि) को उस उस द्वार से सम्बन्धित वीथि चित्त उत्पन्न नहीं होते।

असञ्ञी-सत्वों को चित्त-प्रवृत्ति होती ही नहीं।

२५. असीति वीथिचित्तानि कामे रूपे यथारहं।
चतुसट्ठि तथारूपे द्वे चत्तालीस लब्भरे।।

[**कामावचर लोक** में ८० **वीथि-चित्त** होते हैं। **रूपावचर लोक** में यथायोग्य ६४ और **अरूप लोक** में ४२ चित्त मिलते हैं।]

२६. इस प्रकार यह छः द्वारिक चित्त-प्रवृत्ति बीच बीच में **'भवङ्ग'** रहते हुए आयु-पर्य्यन्त अनवरत जारी रहती है।

पञ्चम परिच्छेद

वीथि-मुक्त संग्रह विभाग

१. वीथिचित्तवसेनेवं पवत्तियमुदीरितो।
पवत्तिसङ्गहो नाम सन्धियं दानि वुच्चति॥

[**वीथि-चित्त** के रूप में चित्त-प्रवृत्ति कह दी गई। अब **प्रतिसन्धि** के प्रकरण में **वीथिमुक्त चित्तों** की प्रवृत्ति का वर्णन किया जा रहा है।]

२. **भूमियाँ** चार हैं, **प्रतिसन्धि** चार तरह की होती हैं, **कर्म** चार प्रकार के हैं, मृत्यु चार तरह से होती है—ये वीथिमुक्त संग्रह के चार चक्के हैं।

चार भूमियाँ

३. **अपाय-भूमि**, **कामसुगति-भूमि**, **रूपावचर-भूमि** तथा **अरूपावचर-भूमि**—ये चार भूमियाँ हैं।

४. **निरय**, **तिरश्चीन-योनि**, **प्रेतयोनि** तथा **असुरयोनि**—ये अपाय-भूमि के चार प्रकार हैं।

५. **मनुष्य**, **चातुम्महाराजिक**, **तावतिंस**, **यामा**, **तुसिता**, **निम्मानरति**, तथा **परनिम्मितवसवत्ती**—ये **काम सुगति-भूमि** के ७ प्रकार हैं।

पूर्वोक्त चतुर्विध **अपाय-भूमि** तथा ये सप्तविध **काम सुगति-भूमि** दोनों मिलाकर एकादशविध भूमि **कामावचर-भूमि** कहलाती है।

(१) (२) (३)
६. **ब्रह्मपारिसज्जा**, **ब्रह्मपुरोहिता** और **महाब्रह्मा**—यह **प्रथम ध्यान**

(४) (५) (६)
भूमि। **परित्ताभा, अप्पमाणाभा** तथा **आभस्सर**—यह **द्वितीय ध्यान भूमि**।
(७) (८) (९)
परित्तसुभा, अप्पमाण-सुभा और **सुभकिण्ह**—यह **तृतीय-ध्यान भूमि**।
(१०) (११) (१२) (१३) (१४) (१५)
वेहप्फला, असञ्ञसत्ता सुद्धावस-भूमि, अविहा, अतप्पा, सुदस्सा, सुदस्सी
(१६)
तथा **अकनिट्ठ**—ये सोलह तरह की **रूपावचर-भूमि**।

७. **अकासानञ्चायतन भूमि, विञ्ञाणञ्चायतन भूमि, आकिञ्चञ्ञायतन** भूमि तथा **नेवसञ्ञानासञ्ञायतन भूमि**—ये चार प्रकार की अरूपावचर भूमि।

८. पुथुज्जना न लब्भन्ति सुद्धावासेसु सब्बथा।
सोतापन्ना च सकदागामिनो चापि पुग्गला॥
अरिया नोपलब्भन्ति असञ्ञापायभूमिसु।
सेसट्ठानेसु लब्भन्ति अरियानरिया पि च॥

[**सुद्धावास भूमि** में न पृथक-जन होते हैं, न **स्रोतापन्न** तथा न **सकृदागामी**। वहाँ केवल **अनागामि-जन** उत्पन्न होते हैं। वे वहीं से **अर्हत** होकर परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं। **असञ्ञभूमि** तथा **अपाय-भूमि** में **स्रोतापन्न** आदि आर्य जन नहीं मिलते। शेष स्थानों में आर्य जन तथा अनार्य-जन दोनों मिलते हैं।]

प्रतिसन्धि के चार प्रकार

९. **अपाय-प्रतिसन्धि, कामसुगति प्रति-सन्धि, रूपावचर प्रति-सन्धि** तथा **अरूपावचर प्रतिसन्धि**—ये प्रति-सन्धि के चार प्रकार हैं।

(१०) **अकुसल विपाकाहेतुकमनोविञ्ञाण धातु** [१।७] अथवा **अकुसलविपाकोपेक्खासहगत सन्तीरण**चित्त एक भव से दूसरे भव में अवक्रमण के समय **अपाय-भूमि** में प्रतिसन्धि ग्रहण करता है। इससे आगे **भवङ्ग**।

अन्त में च्युति होकर **उच्छेद** होता है। यह एक **अपाय-प्रतिसन्धि** कहलाती है।

११. **कुसलविपाकाहेतुकमनोविञ्ञाण** धातु, अथवा **कुसलविपाको पेक्खासहगत सन्तीरणचित्त, काम-सुगतिभूमि** में जन्मान्ध, जन्म के बहरे, जन्म के गूंगे, जन्म से पगले, जन्म से हिजड़े तथा जन्म से नपुंसक मनुष्यों की भूमि में (वृक्ष-पर्वत आदि पर) आश्रित, **अपायिक** (=विनिपातिक) तथा असुर लोगों के चित्त के रूप में **प्रतिसन्धि** ग्रहण करता है, उसके बाद **भवङ्ग** और तदनन्तर **'च्युति'** होती है।

कामावचर सहेतुक ८ अथवा **महाविपाक चित्त** काम-सुगति-भूमि में **प्रति-सन्धि, भवङ्ग, च्युति** करके प्रवर्तित होते हैं।

ये ९ (=१+८) प्रति सन्धियाँ **कामसुगति प्रतिसन्धि** कहलाती हैं।

ये १० (१+१+८) तरह की प्रतिसन्धियाँ **कामावचर प्रतिसन्धि** कहलाती है।

१२. उनमें से अपाय में रहने वालों की, मनुष्यों की, **विनिपातिकों** की, तथा असुरों कीआयु का कोई निश्चित नियम नहीं है। किन्तु **चातुम्महा-राजिक** देवों की आयु पाँच सौ दिव्य-वर्षों की होती है। मनुष्य-गणना के हिसाब से नौवे लाख वर्ष आयु होती है। इससे चौगुनी **तावतिंसों** की। इससे चौगुनी **यामों** की। इससे चौगुनी **तुसितों** की। इससे चौगुनी **निम्मान-रतियों** की। इससे चौगुनी **परनिम्मितवसवतियों** की।

१३. नवसतञ्चेकवीसवस्सानं कोटियो तथा।
वस्ससतसहस्सानि सट्ठि च वस वत्तिसु॥

[परनिम्मितवसवर्ति देवों की आयु नौ अरब इक्कीस करोड़ साठ लाख वर्ष (९२१६०००००००) की होती है।

१४. **प्रथम-ध्यान-विपाक प्रथम-ध्यान-भूमि** में **प्रतिसन्धि भवङ्ग** तथा **च्युति** करके प्रवर्तित होता है। इसी प्रकार **द्वितीय-ध्यान-विपाक** भी। **तृतीय-ध्यान-विपाक द्वितीय ध्यान-भूमि में। चतुर्थ-ध्यान-विपाक तृतीय-ध्यान-भूमि**

में। **पञ्चम-ध्यान-विपाक चतुर्थ-ध्यान-भूमि** में। जो **असञ्ञी** प्राणी हैं उनकी रूप ही प्रतिसन्धि होती है, इसी प्रकार इससे आगे प्रवृत्ति में तथा च्युति-समय पर रूप ही प्रवर्तित होकर निरोध को प्राप्त होता है। ये छः **रूपावचर प्रतिसन्धियाँ** हैं।

(१५) उन (देवताओं) में से **ब्रह्मपारिसज्ज** देवताओं की आयु एक कल्प का तीसरा हिस्सा थी, **ब्रह्मपुरोहित** देवताओं की आयु आधा कल्प, **महाब्रह्मा** (देवताओं) की आयु एक कल्प, **परित्ताभा** (देवताओं) की आयु दो कल्प, **अप्पमाणाभा** की चार कल्प, **आभस्वरों** की आठ कल्प, **परित्त शुभों** की सोलह कल्प, **अप्रमाण शुभों** की बत्तीस कल्प, **शुभकृष्णों** की चौसठ कल्प, **वेहप्फल** तथा **असञ्ञी** प्राणियों की आयु पाँच सौ कल्प, **अविहा** (देवताओं) की हजार कल्प, **अतप्पों** की आयु दो हजार कल्प, **सुदस्सों** की आयु चार हजार कल्प, **सुदस्सी** (देवताओं) की आयु आठ हजार कल्प, **अकनिट्ठो** की आयु सोलह हजार कल्प।

१६. **प्रथम आरूप्य** आदि **विपाक** यथाक्रम प्रथमारूप्य आदि भूमियों में प्रतिसन्धि, भवङ्ग-च्युति करके प्रवर्तित होते हैं। ये चार **आरूप्यप्रतिसन्धियां** हैं।

१७. उनमें से जो **आकाशानञ्चायतन** प्राप्त देवता हैं उनकी आयु बीस हजार कल्प है, **विञ्ञाणञ्चायतन** प्राप्त देवताओं की आयु चालीस हजार कल्प है, **आकिञ्चञ्ञायतन** प्राप्त देवताओं की आयु साठ हजार कल्प है, तथा **नेवसञ्ञानासञ्ञायतन** प्राप्त देवताओं की आयु चौरासी हजार कल्प।

१८. पटिसन्धि भवङ्गञ्च तथा चवनमानसं।
एकमेव तथेवेकविसयञ्चेकजातियं॥

[**प्रतिसन्धि, भवङ्ग** तथा **च्युति** एक ही हैं, एक जाति के हैं, **प्रतिसन्धि** का जो **आलम्बन** है, वही **भवङ्ग** का तथा **च्युति** का है।]

चार प्रकार के कर्म

१९. कृत्य (=कार्य) की दृष्टि से कर्मों के चार प्रकार हैं—(१) **जनक** (=प्रतिसन्धि का कारण), (२) **उपत्थम्भक** (=प्रतिसन्धि का सहायक - कर्म), (३) **उपपीळक** (=दूसरे कर्म को दबाकर कमजोर बना देने वाला कर्म), (४) **उपघातक** (=जो अपने बल से दूसरे दुर्बल कर्म को रोक कर स्वयं फल देता है)

(वि) पाक दान (=फली भूत होने) की दृष्टि से भी कर्म के चार प्रकार हैं—(१) **गरुक** (=मातृहत्या आदि भयानक अकुशल-कर्म), (२) **आसन्न** (=जिसका मरने के समय स्मरण आये), (३) **आचिण्ण** (=लगातार किया गया कुशल वा अकुशल-कर्म), (४) **कटत्ता-कम्म** (=कृत होने से कर्म)।

(वि)पाक-दान की दृष्टि से का मतलब है कि **'गरुक'** कर्म के न होने पर **'आसन्न'** कर्म फल देता है, **'आसन्न'** के न होने पर **'आचिण्ण'** फल देता है, तथा **आचिण्ण** के भी न होने पर **कटत्ता कम्म** फल देता है।

(वि) पाककाल की दृष्टि से भी कर्मों के चार प्रकार हैं—(१) **दिट्ठधम्मवेदनीय** (=इसी जन्म में फल देने वाला कर्म), (२) **उपपज्जवेदनीय** (=इससे अगले जन्म में उत्पन्न होने पर फल देने वाला कर्म), (३) **अपरापरियवेदनीय कर्म** (=अगले जन्म से बाद के किसी जन्म में फल देने वाला कर्म), (४) **अहोसि कर्म** (=फल न देने वाला कर्म)।

(वि)पाक स्थान की दृष्टि से भी कर्मों के चार प्रकार हैं—

(१) **अकुसल** (=जिसका फल 'अपाय' में मिलता है), (२) **कामावचर कुसल** (=जिसका फल 'कामसुगति' लोक में मिलता है,) (३) **रूपावचर कुसल** (=जिसका फल रूपि ब्रह्मलोक में मिलता है) तथा (४) **अरूपावचर कुसल** (=जिसका फल अरूप लोक में मिलता है)।

अकुशल-कर्म

२०. **अकुशल,** शारीरिक-कर्म, वाणी के कर्म तथा मन के कर्म, इस तरह कर्म-द्वार के हिसाब से अकुशल कर्म तीन प्रकार के होते हैं।

२१. कैसे? **प्राणातिपात** (=हिंसा), **अदिन्नादान** (=चोरी), **कामेसुमिच्छाचार** (=परस्त्रीगमन वा परपुरुष गमन), बहुत करके काय-कर्म द्वारा ही किये जाते हैं, इस लिये काय-कर्म। 'बहुत करके' इसलिये कहा गया कि कभी-कभी यह कर्म केवल वाणी और मन से भी किये जाते हैं।

२२. **मृषावाद** (=झूठ बोलना), **पिशुणवाचा** (=चुगलखोरी), **परुषवाचा** (=कठोर वाणी) तथा सम्फप्पलाप (=बेकार बोलना) बहुत करके वाणी (=कर्म) द्वारा ही किये जाते हैं इस लिये ये वाणी के कर्म हैं।

२३. **अभिज्झा** (=दूसरे की चीज के प्रति लोभ), (२) **व्यापाद** (=दूसरे को हानि पहुंचाने की चिन्ता), (३) **मिच्छादिट्ठि** (=मिथ्या-दृष्टि=विपरीत-चिन्तन) काय-कर्म तथा वची-कर्म द्वारा भी प्रकट होने पर बहुत करके मन में ही उत्पन्न होते हैं, इसीलिये 'मनो-कर्म' कहलाते हैं।

(२४) इनमें से **प्राणातिपात** (=हिंसा), **परुषवाचा** (=कठोर बोलना) तथा **व्यापद**—ये तीन **द्वेष मूलक** हैं। **काम भोगों में मिथ्याचार, अभिध्या** तथा **मिध्यादृष्टि**—ये तीनों **लोभमूलक** हैं।

शेष **अदिन्नादान, मृषावाद,** पिशुणावाचा तथा सम्फप्पलाप—ये चार कभी लोभमूलक, कभी द्वेषमूलक—दोनों कारणों से होते हैं।

मोह सभी अकुशल कर्मों में सामान्य रूप से रहता ही है। इसलिये यहाँ उसका नाम नहीं लिया गया।

कामावचर कुशलकर्म

२५. **कामावचर कुशल** भी काय द्वार में प्रवर्तित होने से **'काय-कर्म',** वाणी के द्वार में प्रवर्तित होने से, **वचीकर्म',** मनोद्वार में प्रवर्तित होने से **'मनो**

कर्म'—इस तरह तीन प्रकार का ही होता है। इसी तरह **दान** (=वस्तु-त्याग), **शील** (=शिक्षा के अनुसार आचरण) तथा **भावना** (=योगाभ्यास) में विभक्त करके भी तीन ही तरह का। यही **कामावचर कुशल कर्म** चित्त-उत्पादन के क्रम से आठ तरह का भी होता है। फिर (१) **दान,** (२) **शील,** (३) **भावना,** (४) **अपचायन** (=बड़ों का आदर सत्कार), (५) **वेय्यावच्च** (=माता-पिता, अतिथि, रोगी आदि की सेवा), (६) **पत्तिदान** (=अपने पुण्य में से दूसरों को हिस्सा देना), (७) **पत्तानुमोदन** (=दूसरों द्वारा दिये गये पुण्य का अनुमोदन), (८) **धम्मसवन** (=धर्म सुनना), (९) **धम्मदेसना** (=धर्म देशना), तथा (१०) **द्विट्ठिज्जकम्मं** (=मिथ्या-दृष्टि को छोड़ दृढ़ता पूर्वक सम्यक् दृष्टि को ग्रहण करना।) ये दस और पूर्वोक्त **प्राणातियात** आदि मिलाकर "बीस तरह की" भी गिनती की जाती है। अथवा बारह अकुशल+आठ कुशल चित्त मिल कर भी बीस तरह से **कामावचर कर्म** की संख्या पूरी होती है।

महग्गत कुसल-कर्म

२६. **रूपावचर कुशल कर्म** तो मात्र मनोकर्म ही होता है। वह **भावनामय** होता है। **अर्पणा-प्राप्त** होता है। ध्यान के अङ्गों के हिसाब से पाँच प्रकार का माना गया है।

इसी प्रकार **अरूपावचर कुशल कर्म** भी मनोकर्म ही है। वह भी मनोमय है। भावनामय है। ध्यान के आलम्बनों के भेद से चार प्रकार का होता है।

अकुशल कर्म-विपाक

२७. उद्धच्च अकुशल-कर्म के अतिरिक्त शेष अकुशल कर्म **अपाय-भूमि** में प्रतिसन्धि के कारण होते हैं।

सभी बारह प्रकार के अकुशल चित्त सात अकुशल-विपाक हैं। ये सर्वत्र **काम-लोक** तथा **रूप-लोक** में यथायोग्य फलित होते हैं।

कुशलकर्म-विपाक

२८. **कामावचर कुशल कर्म कामसुगति लोक** में ही प्रतिसन्धि का कारण होता है। **कामावचर सहेतुक विपाक** (=महाविपाक) काम-भव में ही तदारम्मण रूप से उत्पन्न होते हैं। आठों **अहेतुक विपाक** सर्वत्र **काम लोक** तथा **रूप-लोक** में यथायोग्य फलित होते हैं।

२९. **कामावचर कुशल कर्म** में त्रिहेतुक उत्कृष्ठ कुशल कर्म त्रिहेतुक प्रतिसन्धि का कारण होकर, (चित्त संस्कार की) संतति (=प्रवृत्ति) प्रवृत्त होने पर सोलह फलों में फलीभूत होता है। **त्रिहेतुक हीन** (=लोभ, मान आदि विरोधी धर्मों से अभिभूत) **कुशल कर्म** और **द्विहेतुक उत्कृष्ठ कुशल कर्म द्विहेतुक प्रति-सन्धि** का कारण होकर चित्त संस्कार की संतति (=प्रवृत्ति) प्रवृत्त होने पर **त्रिहेतुक विपाकों** से रहित शेष बारह विपाकों को फली-भूत करता है। **द्वि-हेतुक हीन कुशलकर्म अहेतुक प्रतिसन्धि** का ही कारण होता है, (चित्त संस्कार की) **संतति** (=प्रवृत्ति) प्रवृत्त होने पर **अहेतुक विपाक** ही होता है।

३०. असङ्खारं ससङ्खारंविपाकानि न पच्चति।
ससङ्खारमसङ्खारविपाकानीति केचन॥
तेसंद्वादस पाकानि दसट्ठ च यथाक्कमं।
यथा वुत्तानुसारेन यथासम्भवमुद्दिसे॥

[कुछ आचार्य्यों का मत है कि **असङ्खारिक कामावचर कुशल कर्म** के **ससङ्खारिक विपाक** नहीं होते, **ससङ्खारिक कामावचर कुशल कर्म** के **असङ्खारिक विपाक** नहीं होते। उनके मत के अनुसार **उत्कृष्ठ त्रिहेतुक असङ्खारिक कुशल-द्वय** के बारह **विपाक** (=चार असङ्खारिक+आठ अहेतुक) होते हैं। **हीन त्रिहेतुक उत्कृष्ठ द्विहेतुक** असङ्खारिक द्वय के दस (=२ द्विहेतुकासङ्खारिक+आठ अहेतुक) विपाक होते हैं। इसी प्रकार **ससङ्खारिक कामावचर कुशल** के भी दस (=दो द्विहेतुक-

ससङ्खारिक +आठ अहेतुक) विपाक होते हैं। **हीन द्विहेतुक** के तो आठ **अहेतुक विपाक** ही होते हैं।

महग्गत-कर्म विपाक

३१. **रूपावचर कुशल कर्मी प्रथमध्यान** की सीमित भावना करने पर **ब्रह्मपारिसज्ज** (देव योनि) में उत्पन्न होता है, उसी **प्रथम-ध्यान** की मध्यम-दर्जे की भावना करने पर **ब्रह्म-पुरोहितों** में उत्पन्न होता है तथा प्रणीत भावना करने पर **महाब्रह्माओं** में उत्पन्न होता है।

यही क्रम **द्वितीय-ध्यान** में भी है।

तृतीय ध्यान की सीमित भावना करने पर **परित्ताभ** (देवयोनि) में, **मध्यम दर्जे** की भावना करने पर **अप्रमाणाभाओं** में, प्रणीत (=श्रेष्ठ) भावना करने पर **आभस्वर** देवताओं में।

चतुर्थ-ध्यान की सीमित भावना करने पर **परित्तशुभ** (देव-योनि) में मध्यम दर्जे की भावना करने पर **अप्रमाण शुभों** में तथा प्रणीत (=श्रेष्ठ) भावना करने पर **शुभकृष्णों** में।

पञ्चम ध्यान की भावना करने पर **वेहप्फलों** में।

उसी पञ्चम-ध्यान की 'संज्ञा के प्रति विराग उत्पन्न करने वाली' भावना का अभ्यास करने से **असञ्ञी-सत्वों** में जन्म ग्रहण होता है।

अनागामी शुद्धावासों में उत्पन्न होते हैं।

३२. **अरूपावचर-कुशल कर्मी** आरूप्य ध्यानों की भावना कर यथा-क्रम **आरुप्यध्यानों** में ही उत्पन्न होता है।

३३. इत्थं महग्गतं पुञ्ञं यथाभूमिववत्थितं।
जनेति सदिसं पाके पटिसन्धिप्पवत्तियं॥

[इस तरह से यथा-भूमि-व्यवस्थित **रूपावचरा रूपावचर कुशल कर्म प्रतिसन्धि-भवङ्ग** के रूप में सदृश विपाक उत्पन्न करता है।]

च्युति प्रतिसन्धिक्रम

३४. **आयुक्षय, कर्मक्षय, आयु तथा कर्म** दोनों **का क्षय** तथा **उपच्छेदक-कर्म**—ये चार मृत्यु-कारण होते हैं। **उपच्छेदक** कर्म ऐसे भयानक कर्म को कहते हैं जो **दुसिमार**[1] तथा **कलाबु-राजा**,[2] की तरह किसी को उसी क्षण उस स्थान से हटा देने की सामर्थ्य रखता है।

३५. इस प्रकार जो मरने वाले हैं, जिस समय उनका मृत्यु-काल उपस्थित होता है, तो उस समय उन के भावी जन्म का कारण कर्म, अथवा उस कर्म के करने में सहायक वस्तु अर्थात् **कर्म-निमित**, अथवा भावी-जन्म में उपभोग में आने वाली वस्तु अर्थात् **गति-निमित्ति** कर्म-बल से छः द्वारों में से किसी एक द्वार में उपस्थित होता है। इसके बाद उस उपस्थित **आरम्मण** को ही लेकर फलीभूत हुआ हुआ कर्मानुरूप शुद्ध या अशुद्ध और प्राप्य भवानुरूप तथा उसी ओर झुकी हुई चित्त-सन्तति बहुधा बार बार प्रवर्तित होती है। **उपच्छेदक-कर्म** के कारण तुरन्त मृत्यु होने पर यह बार बार प्रवर्तित होना नहीं होता; इसीलिये 'बहुधा' कहा गया। अथवा वही **प्रतिसन्धि** का कारण बनने वाला कर्म नया होकर छः द्वारों में से किसी एक न एक द्वार को प्राप्त होता है।

जिसका मरण-क्षण समीप आया है, यदि वह **कामावचर-भव** से च्युत होकर वहीं उत्पन्न होने वाला है तो **तदारम्मण** के अन्त में वा **जवन** के अन्त में यदि वह **रूपारूप-भव** में उत्पन्न होने वाला है तो **जवन** के अन्त में (=वीथि चित्त के अन्त में) और यदि वीथि-चित्त के बाद भी एक दो क्षण आयु **शेष** रहती है तो **भवङ्ग-क्षण** में वर्तमान-भव का अन्तिम-चित्त **च्युति-चित्त** उत्पन्न होकर निरोध को प्राप्त होता है। उसका निरोध होने के अन्त में,

---

१. दुसिमार कथा मज्झिम-कनिकाय के मारतज्जनिय-सुत्त (५०) में आई है, तथा कलाबु-राजा की कथा ग्वन्तिवादि जातक (सं० ३१३) में।

उसके ठीक बाद ही तथागृहीत **आरम्मण** के आश्रय से चक्षु, श्रोत्र आदि वस्तुओं (=इन्द्रियों) के सहित वा उनसे रहित **अविद्यानुशय** से घिरा हुआ, **तृष्णानुशय**-मूलक सङ्खार से उत्पन्न, **वेदना, संज्ञा, संस्कार** चैतसिक धर्मों से युक्त, **नामरूप** (=सहजात) का आधार होने से उनका पूर्व-अङ्ग, अन्य जन्म से मेल मिलाने वाला होने से **पटिसन्धि** कहलाने वाला उत्पन्न चित्त ही दूसरे जन्म में प्रतिष्ठित होता है।

३७. जब मृत्यु-क्षण समीप आता है उस समय मन्द प्रवृत्ति पाँच ही **'जवनों'** की आशा करनी चाहिये। इसलिये मृत्यु-क्षण समीप होने के समय यदि कोई **आलम्बन** सामने आता है और उस आलम्बन के सामने रहते ही मरना होता है, तो **प्रति-सन्धि भवङ्ग**को भी वर्तमान **आलम्बन** की प्राप्ति होती है। इस प्रकार **कामावचर प्रतिसन्धि** में छः द्वार गृहीत **कर्म-निमित्त, गति-निमित्त** वर्तमान **आलम्बन** तथा **अतीत-आलम्बन** के रूप में उपस्थित होते हैं। **कम्म** (=कर्म) तो अतीत ही होता है। वह मनोद्वार गृहीत होता है। वे सब **कामावचरीय** ही हैं।

३८. **रूपावचर** (लोक) में जो **प्रतिसन्धि** होती है उसमें **प्रज्ञप्ति-भूत कर्म-निमित्त** ही **आलम्बन** होता है। स्कन्धों से भिन्न **प्रज्ञप्ति** एक धर्म-विशेष है जिससे वस्तुओं का ज्ञान होता है। वह **काल-विमुक्त** है। इसी प्रकार **अरूप (लोक)** में जो **प्रति-सन्धि** होती है उसमें **महग्गत** तथा **प्रज्ञप्ति-भूत-कर्म निमित्त** ही आलम्बन होता है। असञ्ञी-सत्वों के लिये **जीवित-नवक** (=वर्ण,[१] गन्ध,[२] रस,[३] ओज,[४] पृथ्वी,[५] अप,[६] तेज,[७] वायु,[८] जीवित[९]) ही **प्रतिसन्धि-आलम्बन** होते हैं। इसलिये वे **रूप-प्रतिसन्धिक** कहलाते हैं। इसी तरह अरूप (लोक) के आलम्बन **अरूप-प्रतिसन्धिक** का। शेष (कामावचर-रूपावचर के) **आलम्बन रूपारूप प्रतिसन्धि** का।

३९. आरुप्प चुतिया होन्ति हेट्ठिमारुप्पवज्जिता।
परमारुप्पसन्धी च तथा कामतिहेतुका॥
रूपावचर चुतिया अहेतुरहिता सियुँ।
सब्बा कामतिहेतुम्हा कामेस्वेव पनेतरा॥

[**अरूपावचर** (लोक) से च्युत होने वाले प्राणी नीचे के **अरूप** (लोकों) को छोड़कर ऊपर के **अरूप** लोकों में **प्रतिसन्धि** ग्रहण करते हैं। पहले के **आकासानञ्चायतन** आदि **आलम्बनों** का अतिक्रमण कर ऊपर के **आलम्बनों** को प्राप्त होते हैं। इसलिये ऊपर के **अरूपभव** में उत्पन्न देव फिर उसी में नहीं आते हैं। किन्तु जब प्रमाद दोष से ज्ञानाभ्यास को छोड़ देते हैं, तब **कामावचर त्रिहेतुक प्रतिसन्धि** होने से कामलोक में उत्पन्न होते हैं। (दो) **अहेतुक प्रतिसन्धिकों** को छोड़ शेष **कामावचर** (देव) सत्रह प्रतिसन्धियों को प्राप्त होते हैं। **त्रिहेतुक कामावचरों** की **च्युति** के अनन्तर उन्हें सभी **प्रतिसन्धियाँ** प्राप्त होती हैं। **शेष द्विहेतुक** तथा **अहेतुकों** की **कामावचर लोक में** ही **प्रतिसन्धि** होती है।

प्रतिसन्धि-च्युति-प्रवर्तन

इस प्रकार जब **प्रति-सन्धि-ग्रहण** हो जाता है, तब **प्रतिसन्धि-निरोध** के बाद से, उसी **आलम्बन** को लेकर वही चित्त **च्युति-चित्त** की उत्पत्ति तक, **वीथि-चित्तुत्पाद** के न होने पर, भव के अङ्ग के कारण **भवङ्ग** कहलाने वाली चित्त-सन्तति के रूप में उसी प्रकार निरन्तर प्रवर्तित होता है जैसे नदी की धारा। अन्त में **च्यवन-क्षण** में **च्युति-चित्त** होकर निरोध को प्राप्त होता है। उसके बाद रथचक्र की तरह **प्रतिसन्धि** आदि इसी प्रकार क्रमशः प्रवर्तित होते हैं।

४१. पटिसन्धि भवङ्ग वीथियो चुति चेह तथा भवन्तरे।
पुन सन्धि भवङ्गमिच्चयं परिवत्तति चित्तसन्तति ॥

[**प्रतिसन्धि, भवङ्ग, चित्तवीथि** और **च्युति** तथा अगले जन्म में फिर **प्रतिसन्धि** और **भवङ्ग**—इसी क्रम से **चित्त-सन्तति** का प्रवर्तन होता है।]

पटिसंखाय पनेतमद्धुवं।
अधिगन्त्वा पदमच्चुतं बुधा ॥

सुसमुच्छिन्न सिनेहबन्धना।
समयेस्सन्ति चिराय सुब्बता॥

[इस (भव-चक्र) को ज्ञान से अध्रुव (=अनित्य) जानकर अच्युत-पद (=निर्वाण) को प्राप्त कर सुव्रती बुध जन स्नेह-बन्धनों को तोड़ चिर-शान्ति को प्राप्त होंगे।]

षष्ठ परिच्छेद

रूप-संग्रह विभाग

१. एत्तावता विभत्ता हि सप्पभेदप्पवत्तिया।
चित्तचेतसिका धम्मा रूपं दानि पवुच्चति॥

[अभी तक (=पञ्चम परिच्छेद तक) **प्रभेद** (=वीथि तथा प्रति-सन्धि) और **प्रवृत्ति** के साथ चित्त-चैतसिक धर्मों का वर्णन किया है। **अब** आगे '**रूप**' के विषय में कहेंगे।]

२. समुद्देसा विभागा च समुट्ठाना कलापतो।
पवत्तिक्कमतो चेति पञ्चधा तत्थ सङ्गहो॥

इस **रूप-संग्रह** में पाँच प्रकार से रूप का विचार किया गया है—(१) रूपों का वर्णन (=(**उद्देस**), (२) रूपों का ११ प्रकार का **वर्गीकरण** (=**विभाग**), (३) चार प्रकार से रूप की उत्पत्ति (=**रूप-समुट्ठान**), (४) समूहीकरण (=**कलाप**), (५) **प्रवृत्तिक्रम**।

रूप समुद्देस

३. चार **महाभूत** (पृथ्वी, अप, तेज, वायु) और चार महाभूतों के आश्रय से उत्पन्न '**रूप**' ग्यारह तरह से संग्रहीत होता है।

४. कैसे ? पृथ्वी-धातु, आपो-धातु, तेजो-धातु, वायो-धातु को 'भूत-रूप' कहते हैं।

चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा तथा काय को 'प्रसाद-रूप' कहते हैं।

रूप, शब्द, गन्ध, रस, आपो-धातु के स्पर्श से विहीन पृथ्वी-धातु, तेजो-धातु तथा वायो-धातु का जो स्पर्श है **'गोचर-रूप'** कहलाता है।

स्त्रीत्व, पुरुषत्व **'भाव-रूप'** कहलाते हैं।

हृदय-वस्तु **हृदय-रूप** कहलाती है।

जीवित इन्द्रिय को **'जीवित-रूप'** कहते हैं।

कबळीकार आहार को **'आहार-रूप'** कहते हैं।

यह जो अट्ठारह तरह का 'रूप' है, यह **'स्वभाव-रूप'** है, यह उत्पादादि लक्षणों से युक्त **'सलक्षण'** है, यह **कर्म-चित्त** आदि प्रत्ययों के कारण अस्तित्व में आने से **'निष्पन्न-रूप'** है, विकृति को प्राप्त होने से **'रूप-रूप'** है, अनित्य, दुःख, अनात्म का विचार कर, विचार करने योग्य होने से **'सम्मसन-रूप'** है।

(५) आकाश-धातु **'परिच्छेद-रूप'** कहलाती है। काय-विज्ञप्ति तथा वची-विज्ञप्ति **'विज्ञप्ति-रूप'** है। 'रूप' की लहुता, मुदुता, कम्मञ्ञता, तथा विज्ञप्ति-द्वय **'विकार-रूप'** कहलाते हैं।

'रूप' का उपचय (=इकट्ठी उत्पत्ति), सन्तति, जरता, अनित्यता **'लक्षण-रूप'** है।

'जाति-रूप' ही यहाँ **'उपचय'** तथा 'सन्तति' कहलाता है।

ये अट्ठारह तरह का 'रूप' अपने अपने रूप के हिसाब से अट्ठाइस तरह का हो जाता है।

(६) कैसे ?

भूतप्पसादविसया भावो हदयमिच्चपि।
जीविताहाररूपेहि अट्ठारसविधं तथा॥
परिच्छेदो च विञ्ञत्ति विकारो लक्खणं ति चा।
अनिप्फन्ना दस चेति अट्ठवीसविधं भवे॥

[चार **महाभूत**+पाँच **प्रसाद**+चार विषय (=**गोचर रूप**)+दो **भाव-रूप**+१ **हृदय वस्तु**+१ **जीवितिन्द्रिय**+१ **कबळीकार आहार**—ये अट्ठारह **निष्पन्नरूप** हैं।]

(१) **परिच्छेद** रूप+(२) **विज्ञप्तियाँ**+३ **विकार-रूप**+४ **लक्षण रूप**—ये दस **अनिष्पन्न** रूप हैं।

यह अट्ठाइस तरह का रूप 'रूप' कहलाता है।]

रूप-वर्गीकरण

यह जितना भी रूप है **'अहेतुक'** है, **'सप्रत्यय'** है, **'सास्रव'** है, **'अभिसंस्कृत'** है, **'लौकिक'** है, **'कामावचरीय'** है, **'आलम्बन**-रहित' है, **अप्रहातव्य'** है; इस प्रकार से यह एक विध 'रूप' भी अन्दरूनी, तथा बाहरी आदि भेद से अनेक प्रकार का हो जाता है।

लोभ-द्वेष-मोह अथवा अलोभ, अद्वेष-मोह छः हेतुओं में से किसी भी एक हेतु से असम्प्रयुक्त, इसीलिये **'अहेतुक'**, कर्मादि प्रत्ययों के कारण उत्पन्न होने से **'सप्रत्यय'**; आस्रवों के आलम्बन होने के कारण **'सास्रव'**; प्रत्ययों से कृत होने के कारण **अभिसंस्कृत**, लोकुत्तर न होने के कारण **लौकिक**, कामावचर सम्बन्धी इसलिये **कामावचरीय** (ब्रह्मलोक में भी जो रूप होगा, वह भी 'कामावचरीय' ही); जो चित्त-चैतसिकों के आलम्बन होते हैं, किन्तु चित्त-चैतसिक जिनके आलम्बन नहीं होते, अर्थात् **आलम्बन-रहित** और जिनका दर्शन या भावना से प्रहाण नहीं होता, इसीलिये **'अप्रहातव्य'**।

यह एकविध रूप अनेकविध कैसे होता है?

पाँच प्रकार का **प्रसाद-रूप** अन्दरूनी-रूप है, शेष सब बाहरी।

पाँच प्रकार का प्रसाद रूप+१ **हृदय रूप**=६ प्रकार का रूप **वस्तु-रूप** है; शेष **अवस्तु-रूप**।

पाँच प्रकार का **प्रसाद रूप**+२ प्रकार का **विज्ञप्तिरूप**=७ प्रकार का रूप **द्वार-रूप** है; शेष **अद्वार-रूप**।

पाँच प्रकार का **प्रसाद-रूप**+२ प्रकार का **भावरूप**+१ प्रकार का **जीवितरूप**=आठ प्रकार का रूप **इन्द्रिय-रूप**; शेष **अनीन्द्रिय-रूप**।

पाँच प्रकार का प्रसाद-रूप+रूप-शब्द-गन्ध-रस ४ आयतन+पृथ्वी धातु,तेजो-धातु, वायो-धातु तीन स्पृष्टव्य आयतन=१२ प्रकार का रूप

ओळारिक रूप कहलाता है, शेष सूक्ष्म रूप। यह **'सन्तिके रूप'** (=पास का रूप) भी कहलाता है; शेष **'दूरे-रूप'**। यह **'सप्रतिघ-रूप'** भी कहलाता है; शेष **अप्रतिघ**-रूप। सप्रतिघ=रगड़ लगने वाला रूप।

कर्म से उत्पन्न होने वाला रूप **'उपादिन्न-रूप'** शेष **अनुपादिन्न-रूप।**

रूपायतन **सनिदस्सन-रूप** (= जिसका दर्शन से बोध हो) हैं; शेष **अनिदस्सनरूप**।

चक्षु, श्रोत्र अत्यन्त समीप के विषयों का ग्रहण करने में असमर्थ होने से **'असम्प्राप्त'** और **घ्राण** आदि तीनों इन्द्रियाँ समीप के विषयों का ग्रहण करने में समर्थ होने से **'सम्प्राप्त'**—ये पाँच प्रकार का रूप 'गोचर-रूप'; शेष **'अगोचर-ग्राहक रूप'**।

वर्ण, गन्ध, रस, ओज, चार प्रकार के भूत—ये आठ रूप **अविनिभोग-रूप** हैं, अर्थात् इनका बँटवारा नहीं हो सकता; **शेष विनिब्भोग-रूप।**

वर्ण (=रूप) तथा ओज (=आहार)।

९. इच्चेवमट्ठवीसति विधम्पि च विचक्खणा।
अज्झत्तिकादिभेदेन विभजन्ति यथारहं॥

[इस प्रकार पण्डित जन (=विचक्षण) अट्ठाइस तरह के रूप के अन्दरूनी (=**अज्झत्तिक**) आदि (अनेक) भेद करते हैं।]

रूप समुट्ठान

(१०) **कर्म, चित्त, उतु** (=**ऋतु**) तथा **आहार**—ये चारों रूप की उत्पत्ति के कारण हैं, इन ही से 'रूप' का 'समुत्थान' होता है।

(११) इन चारों में से पच्चीस प्रकार का भी (कामावचर अकुशल १२+कुशल ८+रूपावचर ५=२५) पूर्व-जन्मकृत (=अभिसंस्कृत) कर्म, करने वाले के ही शरीर में **कुशलाकुशल-कर्म-प्रतिसन्धि** के आश्रय से **कर्म-समुत्थान-रूप** को क्षण क्षण उत्पन्न करता है।

(१२) **अरूप विपाक** (४) तथा **द्विपञ्चविञ्ञाण** (१०) चित्तों

को छोड़कर शेष ७५ तरह का चित्त प्रथम **भवङ्ग-चित्त** को लेकर उत्पन्न होते समय ही **चित्त-सुत्थान-रूप** को उत्पन्न करता है।

अर्पणा-जवन चंक्रमण, शयन, खड़ा होना तथा बैठना—इन चारों **इरियापथों** को भी अपने अधिकार में कर लेता है।

वोट्ठपन, कामावचर जवन तथा **अभिञ्ञाचित्त काय-विज्ञप्ति** तथा **वची-विज्ञप्ति** को भी उत्पन्न करते हैं।

चार लोभ-मूल+चार कामावचर कुसल मूल+चार क्रिया चित्त+एक हसितुप्पाद=१३ **सोमनस्सजवन हसन** (=मुस्कराहट) को उत्पन्न करते हैं।

१३. शीतऊष्णमय 'वस्तु' कहलाने वाली तेजो-धातु **ऋतु-समुत्थान रूप** को प्राणी के शरीर में तथा औषधि-वृक्ष आदि को उत्पन्न करती है।

(१४) 'ओज' नामक आहार **आहार-समुत्थान-रूप** को। जब आहार ग्रहण किया जाता है तब स्थिति-प्राप्त होने पर ही उत्पन्न करता है।

(१५) **हृदय-वस्तु**+आठ **इन्द्रिय रूप**+आठ **अविनिब्भोग रूप**+ **आकाश धातु**—ये अठारह कर्म से ही उत्पन्न होते हैं।

विज्ञप्ति-द्वय,+शब्द+लघुता+मृदुता+कम्मञ्ञता,+आठ **अविनि-ब्भोग रूप+आकाश थातु**—ये पन्द्रह चित्त से उत्पन्न होते हैं।

शब्द, लहुता+मृदुता+कम्मञ्ञता+आठ **अविनिब्भोगरूप+आकाश धातु**—ये तेरह 'ऋतु समुत्थान रूप' हैं।

लहुता+मृदुता+कम्मञ्ञाता+आठ अवनिब्भोग रूप+आकाश धातु —ये बारह **'आहार-समुत्थान रूप'** हैं।

८ **अविनिब्भोग रूप+आकाश थातु**—ये नौ कम्म, चित्त, ऋतु तथा आहार चारों से उत्पन्न होते हैं।

१६. अट्ठारस, पन्नरस, तेरस द्वादस ति च।
कम्मचित्तोतुकाहारजानि होन्ति यथाक्कमं॥
जायमानादि रूपानं सभावत्ता हि केवलं।
लक्खणानि न जायन्ति केहिची ति पकासितं॥

[अट्ठारह रूप **कर्म-समुत्थान** हैं, पन्द्रह 'रूप-'**चित्त-समुत्थान**' हैं, तेरह रूप '**उतुसमुत्थान**' हैं तथा बारह '**आहार**-समुत्थान' हैं। उत्पाद-स्थिति-भङ्ग स्वभाव रूपों के लक्षण को कोई उत्पन्न नहीं करता—यह कहा गया है।]

रूपकलाप

(१७) जो इकट्ठे उत्पन्न होते हैं, जो इकट्ठे निरोध को प्राप्त होते हैं, जिनका एक ही आश्रय है तथा जिनकी एक ही साथ प्रवृत्ति (=वृत्ति) है, ऐसे रूप-कलाप इक्कीस हैं।

(१८) जीवित+आठ अविनिब्भोग रूप+चक्षु (-प्रसाद)—यह '**चक्षु-दशक कलाप**' कहलाता है।

जीवित+आठ अविनिब्भोग रूप+श्रोत्र (-प्रसाद)—यह '**श्रोत्र-दशक कलाप**' कहलाता है।

जीवित-+आठ अविनिब्भोग रूप+घ्राण (-प्रसाद)—यह '**घ्राण-दशक कलाप**' कहलाता है।

जीवित+आठ अविनिब्भोग रूप+जिह्वा (-प्रसाद)—यह '**जिह्वा दशक कलाप**' कहलाता है।

जीवित+आठ अविनिब्भोग रूप+काय (-प्रसाद)—यह '**काय दशक कलाप,** कहलाता है।

जीवित+आठ अविनिब्भोग रूप+इत्थिभाव—यह '**इत्थिभाव दशक कलाप**' कहलाता है।

जीवित+आठ अविनिब्भोग रूप+पुंभाव—यह '**पुंभाव दशक कलाप**' कहलाता है।

जीवित+आठ अविनिब्भोग रूप+वस्तु—यह '**वस्तु दशक कलाप**' कहलाता है।

जीवित+आठ अविनिब्भोग रूप—यह 'जीवित नवक कलाप' कहलाता है। ये नौ '**कर्म-समुत्थान कलाप**' हैं।

(१९) अविनिब्भोग रूप **'शुद्ध-अष्टक-कलाप'** हैं। आठ अविनि-ब्भोग रूप+काय विज्ञप्ति **'काय विज्ञप्ति नवक कलाप'** है।

आठ अविनिब्भोग रूप+वची विज्ञप्ति+शब्द यह **'वची विज्ञप्ति दशक कलाप'** है।

आठ अविनिब्भोग रूप+वची विज्ञप्ति+शब्द+लहुता—यह **'लहुता देकादशक कलाप** है।

आठ अविनिब्भोग रूप+काय विज्ञप्ति+शब्द+लहुता+मृदुता—यह **'लहुतादि द्वादशक कलाप'** है।

आठ अविनिब्भोग रूप+वची विज्ञप्ति+शब्द+लहुता+मृदुता+कम्मञ्ञता—यह 'वची विज्ञप्ति शब्द लहुता आदि तेरसक कलाप' है।

—ये छः **चित्त-समुट्ठान कलाप** हैं।

(२०) इसी प्रकार **शुद्ध अष्टक, शब्द नवक, लहुतादि एकादशक** तथा **शब्द लहुता आदि द्वादशक** चार **ऋतु-समुत्थान कलाप** हैं।

(२१) **शुद्ध अष्टक** तथा **लहुतादेकादश**—ये दो **आहार-समुत्थान कलाप** हैं।

(२२) इन इक्कीस **कलापों में** से दो **वस्तुसमुत्थान कलाप** शरीर से बाहर भी होते हैं, शेष उन्नीस तो अपने शरीर के भीतर ही।

२३. कम्मचित्तोतुकाहार समुट्ठाना यथाक्कमं।
नव छ चतुरो द्वे ति कलापा एकवीसति॥
कलापानं परिच्छेदलक्खणत्ता विचक्खणा।
न कलापङ्गमिच्चाहु आकासं लक्खणानि च॥

[**कर्म समुत्थान कलाप** ९; **चित्त समुत्थान कलाप** छः, **ऋतु समुत्थान कलाप** ४, **आहार समुत्थान कलाप** २—इस प्रकार क्रमशः २१ कलाप होते हैं।

बुद्धिमान् लोगों ने **आकाश धातु** को **कलापों** का अङ्ग नहीं माना है, क्योंकि वह **कलापों** का **परिच्छेद** (=सीमा) मात्र है। इसी प्रकार **उपचय,**

सन्तति (=परम्परा), **जरता** तथा **अनिच्चता** जो कलापों के चार लक्षण हैं वे भी कलापों के अङ्ग नहीं हैं।]

रूप प्रवृत्ति-क्रम

(२४) ये सब रूप यथायोग्य अन्यून-रूप से कामलोक में प्रवृत्ति के समय दिखाई देते हैं।

योनियाँ चार हैं **अण्डजा** (=अण्डों से उत्पन्न होने वाले); **जलाबुजा** (=गर्भ से उत्पन्न होने वाले); **संसेदजा** (=पसीने आदि से उत्पन्न होने वाले कृमि); **ओपपातिक** (=सुर असुर तथा निरय में उत्पन्न होने वाले प्राणियों की योनि)।

प्रतिसन्धि के समय इन योनियों में से **संसेदज** तथा **ओपपातिक** योनि में **चक्षुदशक, श्रोत्र-दशक, घ्राण-दशक, जिह्वा-दशक, काय-दशक, भाव-दशक, वस्तु-दशक** कहलाने वाले **सात-दशक** उत्कृष्ट अवस्था में उत्पन्न होते हैं।

निकृष्ट अवस्था में **चक्षु-दशक, श्रोत्र-दशक, घ्राण-दशक** तथा **भाव-दशक** कभी कभी उत्पन्न नहीं होते हैं। इसलिये यह जानना चाहिये कि उनकी **कलाप**-हानि होती है।

जो गर्भ में शयन करने वाले प्राणी होते हैं उनकी योनि में **काय-दशक, भाव-दशक** तथा **वस्तु-दशक** तीन दशक उत्पन्न होते हैं।

उसमें भी कभी कभी **भाव-दशक** उत्पन्न नहीं होता।

उसके आगे क्रमशः चक्षु-श्रोत्र आदि उत्पन्न होते हैं।

(२५) इस प्रकार प्रतिसन्धि के समय **कर्म-समुत्थान कलाप-सन्तति,** दूसरे नम्बर पर चित्त-उत्पत्ति के समय **चित्त-समुत्थान कलाप सन्तति,** प्रतिसन्धि की स्थिति के समय **ऋतु-समुत्थान कलाप सन्तति** तथा आहार के सम्प्रसारण (=ओजाकरण) के समय **आहार-समुत्थान कलाप सन्तति** कामलोक में प्रदीप-ज्वाला वा नदी-स्रोत की तरह **आयु** पर्य्यन्त लगातार प्रवर्तित होती है।

(२६) मरने के समय **च्युति-चित्त** की उत्पत्ति के बाद सत्रहवें चित्त की स्थिति के आश्रय से **कर्मज रूप** उत्पन्न नहीं होते। इससे पहले उत्पन्न **कर्मज रूप च्युति-चित्त** के साथ ही प्रवर्तित होकर निरोध को प्राप्त हो जाते हैं। इसके बाद **चित्तज रूप** तथा **आहारज रूप** का उच्छेद होता है। इसके बाद **ऋतुसमुत्थान रूप परम्परा** जब तक "मृत शरीर" की संज्ञा बनी रहती है तब तक रहता है।

२७. इच्चेवं मतसत्तानं पुनदेव भवन्तरे।
पटिसन्धिमुपादाय तथा रूपं पवत्तति॥

[इस प्रकार जो मृत-प्राणी होते हैं उनकी दूसरे जन्म में फिर प्रति-सन्धि होने से इसी क्रम से 'रूप' प्रवर्तित होता है।]

(२८) **रूप-लोक** में **घ्राण-दशक, जिह्वा-दशक, काय-दशक भाव-दशक** तथा **आहारज कलाप** नहीं मिलते। इसलिये **रूप-लोक** के सत्वों के **प्रतिसन्धि काल** में **चक्षु-दशक, श्रोत्र-दशक** तथा **वस्तु-दशक, जीवित-नवक** चारों **कर्म-समुत्थान कलाप, चित्तसमुत्थान रूप, ऋतु-समुत्थान रूप** (जीवन) प्रवृत्ति में मिलते हैं।

असञ्ञी सत्वों को **चक्षु**-दशक, **श्रोत्र**-दशक, **वस्तु**-दशक तथा **शब्द**-दशक नहीं होते, इसी तरह सभी **चित्तज रूप** भी। इसलिये उनके **प्रतिसन्धि काल** में जीवित-नवक, शब्द के बिना **ऋतु-समुत्थान रूप** ही प्रवृत्ति में विशेष होता है।

इस प्रकार **काम-भव, रूप-भव** तथा **असञ्ञी-भव** में **प्रतिसन्धि** तथा **प्रवृत्ति** के रूप से दो तरह की **रूप-प्रवृत्ति** जाननी चाहिये।

२९. अट्ठवीसति कामेसु होन्ति तेवीस रूपिसु।
सत्तरसेवसञ्ञानं अरूपे नत्थि किञ्चि पि॥
सद्दो विकारो जरता मरणं चोपपत्तियं।
न लब्भन्ति पवत्तेसु न किञ्चि पि न लब्भति॥

[**कामावचर लोक** में २८ **रूप** होते हैं, **रूप लोक** में २३ **रूप** होते हैं, **असञ्ञी-लोक** में सतरह **रूप** होते हैं। **अरूप लोक** में रूप का कोई रूप नहीं।

शब्द+पाँच प्रकार का **विकार-रूप**+जरता+मरण—ये आठ **रूप** **प्रतिसन्धि** में नहीं होते।

सभी रूप प्रवृत्ति में होते ही हैं।]

निर्वाण

३०. जो **लोकुत्तर** संज्ञा वाला है, जिसका **चतुमार्ग-ज्ञान** से साक्षात किया जाना चाहिये, जो **मार्ग-फल** का आलम्बन है, वह **'वान'** कहलाने वाली तृष्णा को जड़ मूल से खोद देने के कारण **निर्वाण** कहलाता है।

यह स्वभाव से एक ही प्रकार का होने पर भी कारण के ख्याल से दो प्रकार का माना जाता है—(१) **सउपादिसेसनिर्वाण-धातु**, (२) **अनुपादिसेस निर्वाण-धातु**।

फिर आकार की दृष्टि से तीन प्रकार का माना जाता है —(१) **शून्य-स्वरूप**, (२) **अनिमित्त-स्वरूप** तथा (३) **अप्रणिहित-स्वरूप**।

३१. पदमच्चुतमच्चन्तं असङ्खतमनुत्तरं।
निब्बानमिति भासन्ति वानमुत्ता महेसयो॥

[तृष्णा-रहित महर्षी अच्युत, अत्यन्त, असंस्कृत तथा लोकुत्तर पद को **निर्वाण** कहते हैं।]

३२. इति चित्तं चेतसिकं रूपं निब्बानमिच्चपि।
परमत्थं पकासेन्ति चतुधा व तथागता॥

[इस प्रकार तथागत **चित्त, चैतासिक, रूप** तथा **निर्वाण** चार परमार्थों को प्रकाशित करते हैं।]

सप्तम परिच्छेद

समुच्चय संग्रह विभाग

१. द्वासत्ततिविधा वुत्ता वत्थुधम्मा सलक्खणा।
तेसं दानि यथायोगं पवक्खामि समुच्चयं॥

[१ **चित्त**+५२ **चैतसिक**+१८ **निष्पन्न रूप** +१ **निर्वाण**=७२ सलक्षण **वस्तु-धर्म** कहे गये। अब यहाँ उनका यथायोग्य समुच्चय (=संग्रह) कहेंगे।]

२. समुच्चय-संग्रह के चार प्रकार हैं:—

(१) **अकुशल-संग्रह**, (२) **मिश्रक संग्रह**, (३) **बोधिपक्षिय संग्रह**, (४) **सर्वसंग्रह**।

अकुशल-संग्रह

(३) अकुशल-संग्रह में चार आसव हैं:—

(१) **कामासव**, (२) **भवासव**, (३) **दृष्टि आसव** (४) **अविद्या आसव**।

(४) चार ओघ हैं—(१) **कामोघ**, (२) **भवोघ**, (३) **दिट्ठि ओघ**, (४) **अविधा ओघ**।

(५) चार योग—(१) **कामयोग**, (२) **भवयोग**, (३) **दिट्ठि योग**, (४) **अविद्या-योग**।

(६) चार **ग्रन्थ—अभिध्या** (=**लोभ**) **कायगन्थो**, (२) **व्यापाद (द्वेष) कायगन्थ**, (३) **सीलब्बतपरामासो कायगन्थो**, (४) **इदं सच्चाभिनिवेस कायगन्थो** (=किसी बात को 'सत्य' मानकर उसका दुराग्रह)।

(७) चार **उपादान**—(१) **कामुपादान**, (२) **दृष्टि उपादान**, (३) **सीलब्बतउपादान**, (४) **अत्तवादुपादान**।

(८) छः **नीवरणानि**—(१) **कामच्छन्द** नीवरण, (२) **व्यापाद** नीवरण, (३) **थीनमिद्ध** नीवरण, (४) **उद्धच्चकुक्कुच्च** नीवरण, (५) **विचिकिच्छा** नीवरण, (६) **अविज्जा** नीवरण।

(९) सात **अनुसय**—(१) **कामराग अनुसय**, (२) **भवरागअनुसय** (३) **पटिघानुसय**, (४) **मानानुसय**, (५) **दिट्ठानुसयो**, (६) **विचिकिच्छानुसय**, (७) **अविज्जानुसय**।

(१०) दस **संयोजन—कामराग संयोजन**, **रूपराग संयोजन**, **अरूपराग संयोजन**, **पटिघसंयोजन**, **मानसंयोजन**, **दिट्ठि संयोजन**, **सीलब्बतपरामास संयोजन**, **विचिकिच्छा संयोजन**, **उद्धच्च संयोजन**, **अविज्जा संयोजन**—सुत्तन्त-क्रम से।

(११) और भी दस **संयोजन**—(१) **कामराग संयोजन**, (२) **भवराग संयोजन**, (३) **पटिघ संयोजन**, (४) **मान संयोजन**, (५) **दिट्ठि संयोजन**, (६) **सीलब्बतपरामास संयोजन**, (७) **विचिकिच्छा संयोजन**, (८) **इस्सा संयोजन**, (९) **मच्छरिय संयोजन**, (१०) **अविज्जा संयोजन**—अभिधर्म क्रम से।

(१२) दस **क्लेश**—(१) **लोभ**, (२) **द्वेष** (=दोस), (३) **मोह**, (४) **मान**, (५) **दिट्ठि**, (६) **विचिकिच्छा**, (७) **थीन**, (८) **उद्धच्चं**, (९) **अहिरिक**, (१०) **अनोत्तपं**।

(१३) **आसव** आदि में **कामासव** से मतलब है काम सम्बन्धी तृष्णा, **भवासव** से मतलब है **भव**-सम्बन्धी तृष्णा।

शीलव्रत-परामाश; **इदं सत्याभिनिवेश**; तथा **आत्मवाद**—ये तीन "दृष्टियां" ही कहलाते हैं।

१४. आसवोघा च योगा च तयो गन्था च वत्थुतो।
उपादाना दुवे वुत्ता अट्ठ नीवरणा सियुं॥

छळेवानुसया होन्ति नव संयोजना मता।
किलेसा दस वुत्तोयं नवधा पापसङ्गहो।।

[**कामास्रव, भवास्रव** का मतलब है तृष्णा; इसी प्रकार **कामोघ** तथा **भवओघ** का भी मतलब है तृष्णा और इसी प्रकार **कामयोग भवयोग** का भी मतलब है तृष्णा ही। इसलिये ये छः तीन ही हुए। **ग्रन्थों** (=गांठों) में **शीलव्रत-परामर्श, इदंसत्याभिनिवेश**—ये दो 'दृष्टि' ही हैं। इसलिये वे भी कुल तीन ही हुए।

उपादान भी दो हुए; **कामुपादान** तथा **दृष्टि-उपादान** (=दिट्ठुपादान+सीलब्बतुपादान +अत्तवादुपादान)।

नीवरण आठ हुए—**'थीन' 'मिद्ध'** पृथक पृथक दो, **'उद्धच्च' 'कुक्कुच्च'** पृथक पृथक दो तथा शेष चार 'नीवरण'।

कामरागानुसय तथा **भवरागानुसय** को एक 'तृष्णा' मान कर छः **अनुसय**।

कामरागादि 'तृष्णा' ही हैं तथा **शीलव्रतपरामाश** 'दृष्टि' ही है—इसलिये **संयोजन** नौ ही हुए।

क्लेशों में कमी बृद्धि नहीं होती। इसलिये वे दस ही हैं।

इस तरह से इस 'पाप-संग्रह' के नौ प्रकार हैं।]

मिश्रक-संग्रह

(१५) छः **हेतु—लोभ, दोस** (=द्वेष), **मोह, अलोभ, अदोस**(=अद्वेष), **अमोह**।

(१६) **ध्यान** के सात **अङ्ग—वितर्क, विचार, प्रीति, एकाग्रता, सोमनस्स, दोमनस्स, उपेक्षा**।

(१७) **मार्ग** के बारह **अङ्ग—सम्मादिट्ठि, सम्मासङ्कप्पो, सम्मावाचा, सम्माकम्मन्तो, सम्माआजीवो, सम्मावायामो; सम्मासति, सम्मासमाधि, मिच्छादिट्ठि, मिच्छासङ्कप्पो, मिच्छाव्वायामो, मिच्छासमाधि**।

कुशलमार्ग में **सम्यक् दृष्टि** आदि आठ अङ्ग होते हैं, **अकुशल-मार्ग** में अधिक से अधिक चार ही अङ्ग होते हैं—**मिच्छादिट्ठि, मिच्छासङ्कप्पो, मिच्छावायामो, मिच्छासमाधि।**

(१८) बाईस **इन्द्रियां—चक्खुन्द्रिय, सोतिन्द्रिय, घानिन्द्रिय, जिह्विन्द्रिय कायन्द्रिय, इत्थिन्द्रिय, पुरिसिन्द्रिय, जीवितिन्द्रिय, मनिन्द्रिय, सुखिन्द्रिय, दुक्खिन्द्रियं, सोमनस्सिन्द्रिय दोमनस्सन्द्रिय, उपेक्खिन्द्रिय, सद्धिन्द्रियं, विरियिन्द्रियं, सतिन्द्रियं, समाधिन्द्रियं, पञ्ञिन्द्रियं, अनञ्ञातञ्ञस्सामीतिन्द्रियं, अञ्ञिन्द्रिय, अञ्ञाताविन्द्रिय।**

अज्ञात (=चतुआर्य्य-सत्य आदि) को जानूंगा—ऐसी इन्द्रिय, नहीं जानने वाले की इन्द्रिय; क्षीणास्रव जानकार की अञ्ञाताविन्द्रिय।

१९. नौ **बल—श्रद्धाबल, वीर्य-बल, स्मृति-बल, समाधि-बल, प्रज्ञा-बल, ह्री-बल, ओतप्प-बल, अहिरिक-बल** तथा **अनोत्तप्प-बल।**

(२०) चार **अधिपती—छन्दाधिपति, विरियाधिपति, चित्ताधिपति, वीमंसाधिपति।**

(२१) चार **आहार—कबळीकारो आहार** (=कौर करके खाया जाने वाला आहार), दूसरा **स्पर्श,** तीसरा **मनोसंचेतना,** चौथा **विज्ञान।**

(२२) इन्द्रियों में सोतापत्ति मार्गज्ञान ही **अनञ्ञातञ्ञस्सामी इन्द्रिय** कहलाता है; अर्हत्व फल ज्ञान **अञ्ञाताविन्द्रिय** कहलाता है; बीच के शेष छः ज्ञान (सोतापत्ति-फल ज्ञान से अर्हत्व-मार्ग ज्ञान तक) **अञ्ञिन्द्रिय** कहलाते हैं।

जीवित-इन्द्रिय 'रूप' तथा **'अरूप'** भेद से दो प्रकार की होती है।

(२३) **(द्वि) पञ्चविञ्ञाण चित्तों** में ज्ञान के सात अंग नहीं होते। **पञ्चद्वारावर्जन, द्विपञ्चविज्ञान, सम्पटिच्छन सन्तीरण चित्तों** में (=अविरियेसु) श्रद्धाबल आदि नौ बल नहीं होते। **अहेतुक चित्तों** में मार्ग के बारह **अङ्ग** नहीं होते। उसी प्रकार **विचिकित्सा चित्त** में **एकाग्रता मार्ग-इन्द्रिय-बल-भाव** को प्राप्त नहीं होती। **द्विहेतुक-तिहेतुक जवन**

चित्तों में (=दो **मोमूह चित्त** तथा एक **हसितुप्पाद चित्त** छोड़कर शेष बावन चित्तों में) एक ही **अधिपति** की उपलब्धि होती है।

२४. छहेतू पञ्च झानङ्गा मग्गङ्गा नव वत्थुतो।
सोळसिन्द्रियधम्मा च बलधम्मा नवेरिता॥
चत्तारोधिपती वुत्ता तथाहारा ति सत्तधा।
कुसलादिसमाकिण्णो वुत्तो मिस्सकसङ्गहो॥

[हेतु छः हैं। **सोमनस्स, दोमनस्स, उपेक्खा** ये तीन अङ्ग **'वेदना'** मात्र ही हैं; इसलिए **वितर्क, विचार प्रीति, चित्तेकग्गता** तथा **वेदना**—इस प्रकार पांच **ध्यानाङ्ग** हुए। नौ मार्ग-अङ्ग[1]। इन्द्रियों में सुख, दुक्ख, सोमनस्स, दोमनस्स, उपेक्खा आदि छोड़कर तथा रूपारूप के हिसाब से दो जीवितिन्द्रियों गिनकर **इन्द्रिय-धर्म**[2] १६ हुए। चार अधिपति। वैसे ही चार प्रकार का आहार। इस तरह से कुशलादि से समाकीर्ण मिश्रकसंग्रह सात प्रकार का हुआ।]

बोधिपक्खिय संग्रह

बोधिपक्षीय संग्रह में —

(२५) **चार स्मृति उपस्थान—कायानुपस्सना स्मृति उपस्थान, वेदनानुपस्सना स्मृति उपस्थान, चित्तानुपस्सना स्मृति उपस्थान, धर्मानुपस्सना स्मृति उपस्थान।**

---

१. सम्यक संकल्प तथा मिथ्या-संकल्प को एक ही मान लिया जाव, वैसे ही सम्यक-व्यायाम तथा मिथ्या-व्यायाम को और फिर वैसे ही सम्यक समाधि तथा मिथ्या-समाधि।

२. संख्या १० से १४ तक वेदनेन्द्रिय। पञ्चेन्द्रिय तथा शेष तीन भी 'प्रज्ञा' ही हैं। आठवीं इन्द्रिय जीवितेन्द्रिय को नाम, तथा 'रूप' के हिसाब से दो में विभक्त कर देना चाहिये।

(२६) **चार सम्यक्प्रधान**—उत्पन्न अकुशल धर्मों के प्रहाण के लिये प्रयत्न (=व्यायाम), अनुत्पन्न अकुशल धर्मों को उत्पन्न न होने देने के लिये प्रयत्न (=व्यायाम), अनुत्पन्न कुशल धर्मों को उत्पन्न करने के लिये प्रयत्न (=व्यायाम) तथा उत्पन्न कुशल धर्मों की वृद्धि के लिये प्रयत्न (=व्यायाम)

(२७) **चार ऋद्धिपाद** (१) **छन्द ऋद्धिपाद,** विरिय **ऋद्धिपाद, चित्तिद्धिपाद, वीमंसिद्धिपापाद** ।

(२८) पांच इन्द्रिया—**सद्धिन्द्रिय, विरिय इन्द्रिय, सतीन्द्रिय, समाधीन्द्रिय,** तथा **पञ्ञिन्द्रियं** ।

(२९) पञ्च बलानि—**सद्धाबल, विरियबल, सतिबल, समाधिबल** तथा **प्रज्ञाबल**।

(३०) सप्त बोधि-अङ्ग—**सति सम्बोधि-अङ्ग, धम्मविचय-सम्बोधि-अङ्ग, विरिय सम्बोधि-अङ्ग, पीति सम्बोधि-अङ्ग, प्रश्रब्धि सम्बोधि-अङ्ग, समाधि सम्बोधि अङ्ग** तथा **उपेक्षा सम्बोधि अङ्ग** ।

धर्मों का विचार करे, परीक्षा करे, विचय करे, वह **धर्म-विचय सम्बोधि अङ्ग** ।

(३१) आठ मार्ग अङ्ग—**सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति** तथा **सम्यक् समाधि** ।

(३२) इनमें जो चारों स्मृति-उपस्थान हैं उन्हीं का अकेला नाम **'सम्यक् स्मृति'** है और जो चार सम्यक-प्रधान हैं उन्हीं का अकेला नाम **'सम्यक्-व्यायाम'** है।

३३. छन्दो चित्तमुपेक्खा च सद्धा पस्सद्धिपीतियो।
सम्मादिट्ठि च सङ्कप्पो वायामो विरतित्तयं॥
सम्मासति समाधी ति चुद्दसेते सभावतो।
सत्ततिंसपभेदेन सत्तधा तत्थ सङ्गहो॥

[(१) **छन्द**, (२) **चित्त**, (३) **उपेक्षा**, (४) **श्रद्धा**, (५) **प्रश्रब्धि**, (६) **प्रीति**, (७) **सम्यक् दृष्टि**, (८) **सम्यक् संकल्प**, (९) **सम्यक् व्यायाम**, (१०) **सम्यक् वाचा**, (११) **सम्यक् कर्मान्त**, **सम्यक् आजीविका**, (विरति-त्रय), (१३) **सम्यक् स्मृति** तथा **सम्यक् समाधि**—ये स्वभाव से चौदह हैं। उन्हीं के सैंतीस भेद हैं, जिन का सात तरह से—(१) **चार** स्मृति-प्रधान, (२) **चार सम्यक् प्रधान** आदि क्रम से संग्रह किया गया है।[1]

३४. सङ्कप्पपस्सद्धि च पीतुपेक्खा।
छन्दो च चित्तं विरतित्तयञ्च।
नवेकट्ठाना विरियं नवट्ठ।
सती समाधी चतु पञ्च पञ्ञा।
सद्धा दुठानुत्तमसत्तत्तिस।
धम्मानपेसो पवरो विभागो॥

[**संकल्प**, **प्रश्रब्धि**, **प्रीति**, **उपेक्षा**, **छन्द**, **चित्त**, तथा **विरति-त्रय**—ये नौ धर्म एक ही स्थान वाले हैं। (दूसरी ओर) एक ही वीर्य्य के नौ स्थान होते हैं—चारों **सम्यक् प्रधान**, **वीर्य्य**, **ऋद्धि** पाद, **वीर्य्य-इन्द्रिय**, **वीर्य्य-बल**, **वीर्य्य**-सम्बोधि अङ्ग तथा **सम्यक् व्यायाम**। इसी प्रकार एक **स्मृति** के आठ स्थान हैं—**चारों स्मृति-उपस्थान**, **स्मृति-इन्द्रिय**, **स्मृति-बल**, **स्मृति-सम्बोधि-अङ्ग** तथा **सम्यक् स्मृति**। **समाधि** के चार स्थान—**समाधि-इन्द्रिय**, **समाधि बल**, **समाधि सम्बोज्झङ्ग** तथा **सम्यक्-समाधि**। **प्रज्ञा** के पांच स्थान—(१) **वीमंसिद्धिपाद** (२) **पञ्ञिन्द्रियं**, (३) **प्रज्ञाबल**, (४) **धम्मविचय सम्बोधि-अङ्ग** तथा (५) **सम्यक्-दृष्टि**। **श्रद्धा** के दो स्थान—**श्रद्धेन्द्रिय** तथा **श्रद्धा-बल**।

---

१. **स्मृति उपस्थान ४+सम्यक्प्रधान ४+ऋद्धिपाद ४+इन्द्रिय ५+बल ५+बोज्झङ्ग ७+मग्गङ्ग ८=३७**

—यह सैंतीस धर्मों का श्रेष्ठ वर्गीकरण है।

३५. सब्बे लोकुत्तरे होन्ति न वा सङ्कप्पपीतियो।
लोकिये पि यथायोगं छब्बिसुद्धिप्पवत्तियं।।

[**लोकुत्तर चित्तों** में सभी **बोधि-पक्षीय** धर्म होते हैं। **सङ्कल्प** तथा **प्रीति** नहीं भी होते। **लौकिक** में भी छः **लौकिक विशुद्धियों** (**सीलविशुद्धि, चित्त विशुद्धि, दृष्टि विशुद्धि कङ्खावितरण विसुद्धि, मग्गामग्गज्ञानदर्शन विशुद्धि**) को लेकर यथायोग्य होते हैं।

सर्व-संग्रह

(३६) **पांच स्कन्ध—रूप-स्कन्ध, वेदना-स्कन्ध, संज्ञा-स्कन्ध, संस्कार-स्कन्ध** तथा **विज्ञाण-स्कन्ध।**

(३७) **पांच उपादान-स्कन्ध—रूपुपादान स्कन्ध, वेदना उपादान स्कन्ध, संज्ञा उपादान स्कन्ध, संस्कार उपादान स्कन्ध** तथा **विज्ञान उपादान स्कन्ध।**

स्कन्धों तथा उपादान स्कन्धों में इतना ही अन्तर है कि **स्कन्ध** केवल अर्हतों के होते हैं जहां उपादानों का क्षय हो गया है, **उपादान स्कन्ध** पृथक-जनों के होते है जहाँ उपादानों का क्षय नहीं हुआ है।

(३८) **बारह-आयतन—चक्खायतन, सोतायतन, घानायतन, जिह्वा-यतन, कायायतन, मनायतन, रूपायतन, सद्दायतन, गन्धायतन, रसायतन, पोट्ठब्बायतन तथा धम्मायतन।**

(३९) **अठारह धातु—चक्खू धातु, सोत धातु, घान धातु, जिह्वा-धातु, काय-धातु, रूप-धातु, सद्दधातु, गन्धधातु, रसधातु, पोट्ठब्ब धातु, चक्खुविञ्ञाणधातु, सोतविञ्ञाण धातु, घानविञ्ञाण धातु, जिह्वा विञ्ञाण धातु, काय विञ्ञाण धातु, मनोधातु धम्म धातु, तथा मनोविञ्ञाण धातु।**

(४०) **चार आर्य सत्य—दुःख आर्य-सत्य, दुःख समुदय आर्य-सत्य, दुःख निरोध आर्य-सत्य, दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा आर्य-सत्य।**

(४१) यहाँ ५२ चैतसिक (२।१) १६ सूक्ष्म रूप (६–८) तथा निर्वाण—ये कुल ६९ धर्म ही **धर्मायतन** अथवा **धर्म-धातु** कहलाते हैं।

मनायतन ही सात **विज्ञान-धातु** रूप से भिन्न-भिन्न हो जाता है।

संग्रह-गाथा

४२. रूपञ्च वेदना सञ्ञा सेसा चेतसिका तथा।
विञ्ञाण मिति पञ्चेते पञ्चक्खन्धानि भासिता॥
पञ्चुपादानक्खन्धा ति तथा तेभूमका मता।
भेदाभावेन निब्बानं खन्धसङ्गहनिस्सटं॥
द्वारालम्बनभेदेन भवन्तायतनानि च।
द्वारालम्बतदुप्पन्न परियायेन धातुयो॥

रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार (=**वेदना** तथा **संज्ञा** को छोड़कर शेष पचास **चैतसिक**) तथा **विज्ञान**—ये पांच स्कन्ध कहे गये हैं।

पञ्चुपादान स्कन्ध कामावचर, रूपावचर तथा **अरूपावचर** सम्बन्धी होने से **त्रिभूमिक** कहलाते हैं।

भेद मुक्त होने से निर्वाण की गिनती स्कन्धों में नहीं है।

छः द्वार तथा छः आलम्बनों के भेद से बारह **आयतन** कहे गये हैं।

छः द्वार, छः आलम्बन तथा उन्हीं से उत्पन्न छः विज्ञान मिलाकर अट्ठारह **धातु** कहे गये हैं।]

४३. दुक्खं तेभूमकं वट्टं तण्हा समुदयो भवे।
निरोधो नाम निब्बानं मग्गो लोकुत्तरो मतो॥
मग्गयुत्ता फला चेव चतुसच्चविनिस्सटा।
इति पञ्चप्पभेदेन पवुत्तो सब्बसङ्गहो॥

[त्रिभूमक संसार दुक्खसत्य है, **तृष्णा समुदय-सत्य** है, **निर्वाण निरोध-सत्य** है, **लोकुत्तर अष्टांगिक-मार्ग मार्ग-सत्य** है।]

मार्ग-युक्त स्पर्श आदि चैतसिक धर्म तथा मार्गफल चार आर्य-सत्यों के अन्तर्गत नहीं आते।

इस प्रकार स्कन्ध, उपादान-स्कन्ध, आयतन, धातु तथा आर्य सत्य— ये पांच विभाग हुए।

अष्टम परिच्छेद

प्रत्यय संग्रह विभागा

१. येसं सङ्खतधम्मानं ये धम्मा पच्चया यथा।
तं विभागमिहेदानि पवक्खामि यथारहं।।

[अब जो **संस्कृत-धर्म** जिन **संस्कृत धर्मों** के प्रत्यय होते हैं, उस विषय को यथायोग्य कहेंगे।]

दो प्रत्यय-नय

(२) प्रत्यय-संग्रह दो प्रकार का जानना चाहिये—**पटिच्चसमुप्पाद नय** तथा **पट्ठान-नय**।

(३) इन दोनों नयों में से उनके भाव के अनुरूप होने वालों का जो भाव है, उस भाव के आकार मात्र से उपलक्षित **प्रतीत्य समुत्पाद-नय** है।

संघर्ष-प्रत्ययों की स्थिति को लेकर ही पट्ठान-नय कहा जाता है।

आचार्य्य (बुद्ध घोष) ने दोनों को मिलाकर उनकी व्याख्या की है। **अविद्या** के होने से **संस्कार, संस्कारों** के होने से **विज्ञान, विज्ञान** के होने से **नाम-रूप, नामरूप** के होने से **षड़ायतन, षड़ायतन** के होने से **स्पर्श, स्पर्श** के होने से **वेदना, वेदना** के होने से **तृष्णा, तृष्णा** के होने से **उपादान, उपादान** के होने से **भव, भव** के होने से **जाति** (=जन्म), **जाति** के होने से **जरा-मरण-शोक-परिदेव** (=रोना पीटना) **दुक्ख दौर्मनस्य** तथा **उपायास** (=पश्चात्ताप) होते हैं। इस प्रकार इस सारे के सारे **दुक्ख-स्कन्ध** का समुदय होता है। यह **प्रतीत्य-समुत्पाद-नय** है।

अविद्या 'विद्या' का अभाव मात्र नहीं है, यह **विद्या** का विपक्ष है, जैसे 'अमित्र' मित्र का अभाव मात्र नहीं है वह मित्र का विपक्ष है। **अविद्या** से **पूर्वजन्म के सर्व-क्लेश** अभिप्रेत हैं।

संस्कार (—पूर्व जन्म की कर्म-अवस्था। पूर्व जन्म में आदमी ही=चित्त-सन्तति) पुण्य अपुण्यादि कर्म करता है। यह पुण्यादि **कर्मावस्था संस्कार** है।

विज्ञान—यह **प्रतिसन्धि-स्कन्ध** है। प्रतिसन्धि-क्षण या उपपत्ति-भव-क्षण में कुक्षिगत ५ स्कन्ध **विज्ञान** हैं।

नाम-रूप—विज्ञान-क्षण से लेकर **षड़ायतन** तक की अवस्था **'नाम-रूप'** है।

षड़ायतन—छः इन्द्रियों के प्रादुर्भाव-काल से लेकर इन्द्रिय, विषय और विज्ञान के सं-निपात (=एकत्र होने) तक **षड़ायतन** है।

स्पर्श—जब तक बालक सुख-दुःखादि को परिच्छिन्न करने में समर्थ नहीं होता तब तक की अवस्था **स्पर्श** कहलाती है।

वेदना—यावत् मैथुन्-राग का समुदाचार नहीं होता तब तक की अवस्था **वेदना** कहलाती है।

तृष्णा—भोग (=वस्तुकाम) तथा मैथुन (=क्लेश-काम) की कामना करने वाले पुद्गल की अवस्था **तृष्णा** कहलाती है।

उपादान—भोगों की पर्येष्टि में दौड़-धूप करने वाले पुद्गल की अवस्था **'उपादान'** कहलाती है।

भव—उपादान का अनागत-फल **भव** है।

जाति—मरण के अनन्तर प्रतिसन्धि-काल के पांच-स्कन्ध 'जाति' हैं। **प्रत्युत्पन्न-भव** की समीक्षा में जिस अंग को 'विज्ञान' कहते हैं, उसे ही अनागत-भव की समीक्षा में 'जाति' कहते हैं।

जरा-मरण—जाति (=विज्ञान)—**नामरूप, षड़ायतन, स्पर्श-वेदना** यह सब जरा-मरण है।

(५) प्रतीत्यसमुत्पाद के तीन 'काल' हैं, बारह 'अंग' हैं, बीस 'आकार' हैं, तीन 'सन्धियां' हैं, चार 'संक्षेप' हैं, तीन 'वर्तुल' हैं तथा दो 'मूल' हैं।

(६) कैसे? **अविद्या** तथा **संस्कार** '**भूतकाल**' है, **जाति** तथा **जरामरण** '**भविष्यत् काल**' है, बीच के आठ '**वर्तमान-काल**' हैं।

(७) **अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नामरूप, षड़ायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति,** तथा **जरा-मरण**—ये बारह **अङ्ग** हैं। शोकादि तो इन्हीं के **फलित अङ्ग** हैं। वे **भव-चक्र** के **अङ्ग** नहीं गिने जाते।

(८) जब (**अतीत-भव** की) अविद्या तथा संस्कार का ग्रहण होता है, तो तृष्णा-उपादान-भव का भी ग्रहण होता है। इसी प्रकार (**प्रत्युत्पन्न-भव** के) तृष्णा-उपादान-भव का ग्रहण करने पर अविद्या-संस्कार का ग्रहण भी होता ही है। इसी तरह (भावी) जाति जरा-मरण का मतलब है विज्ञान, नामरूप, षड़ायतन, स्पर्श तथा वेदना।

अतीते हेतवो पञ्च इदानि फल पञ्चकं।
इदानि हेतवो पञ्च आयतिं फल पञ्चकं॥

[**अतीत-भव** के पाञ्च हेतु, **वर्तमान-भव** के पांच फल, वर्तमान-भव के पपांच हेतु, भावी-भव के पांच फल—इस प्रकार बीस आकार हुए।]

संस्कारों और **प्रतिसन्धि-विज्ञान** के बीच में एक **हेतु-फल-सन्धि** मानी गई है। **वेदना** तथा **तृष्णा** के बीच में एक **हेतु-फल-सन्धि** मानी गई है। **भव** तथा **जाति** (=जन्म) के बीच में एक **हेतु-फल-सन्धि** मानी गई है।

इस प्रकार यह **भव-चक्र** त्रिसन्धि वाला है।

(१) **अविद्या संस्कार,** (२) **विज्ञाण-नामरूप-षड़ायतन-स्पर्श तथा वेदना,** (३) **तृष्णा—उपादान-भव,** तथा (४) **जाति जरामरणादि** ये चार संक्षेप हैं।

(९) अविज्जा-तृष्णा के उपादान-कारण होने से **क्लेशवर्तुल** (=किलेसवट्ट) कर्म-भाव तथा सङ्खारों के संयोग से बनने वाला **कर्म-वर्तुल** (=कम्मवट्ट), तथा उपपत्ति-भव और विज्ञान-नामरूप—षड़ायतन-स्पर्श-वेदना जाति जरा-मरणादि के संयोग से बनने वाला—**विपाक वर्तुल** (=विपाक वट्ट)—ये तीन वट्ट हैं।

अविद्या और **तृष्णा** को इस त्रि-वट्ट **भवचक्र** का मूल जानना चाहिये।

१०. तेसमेव च मूलानं निरोधेन निरुज्झति॥
जरामरणमुच्छाय पीळतानं अभिण्हसो।
आसवानं समुप्पादा अविज्जा च पवत्तति॥
वट्टमाबन्धमिच्चेवं ते भूमकमनादिकं।
पटिच्चसमुप्पादो ति पट्ठपेसि महामुनि॥

[उन अविद्या-तृष्णा रूपी मूलों के निरोध से ही यह **वर्तुल** (=वट्ट) निरुद्ध होता है। जो जरा-मरण रूपी मूर्छा से लगातार पीड़ित रहते हैं, ऐसे आदमियों में **आसवों** की उत्पत्ति से **अविद्या** की उत्पत्ति होती है।

[इस प्रकार यह **कामावचर, रूपावचर** तथा **अरूपावचर** तीन लोकों में विभक्त अनादि, त्रिभूमिक वर्तुल (=वट्ट) बँधा हुआ है। महामुनि (= भगवान बुद्ध) ने **प्रतीत्यसमुत्पाद** को स्थापित किया है।]

पट्ठान-नय

(१) **हेतु पच्चयो,** (२) **आरम्मण पच्चयो,** (३) **अधिपति-पच्चयो,** (४) **अनन्तर पच्चयो,** (५) **समनन्तर पच्चयो,** (६) **सहजात पच्चयो,** (७) **अञ्ञमञ्ञपच्चयो,** (८) **निस्सयपच्चयो,** (९) **उपनिस्सय-पच्चयो,** (१०) **पुरेजातपच्चयो,** (११) **पच्छाजातपच्चयो,** (१२) **आसेवन पच्चयो,** (१३) **कम्मपच्चयो,** (१४) **विपाक पच्चयो,** (१५) **आहार-पच्चयो,** (१६) **इन्द्रिय पच्चयो,** (१७) **ध्यान पच्चयो,** (१८) **मग्ग पच्चयो,** (१९) **सम्पयुत्त पच्चयो** (२०) **विप्पयुत्तपच्चयो,** (२१) **अत्थि पच्चयो,** (२२) **नत्थिपच्चयो,** (२३) **विगतपच्चयो, अविगत-पच्चयो।** यह पट्ठान-क्रम है।

१. **हेतु-प्रत्यय**—मूल भाव से उपकारक धर्म। धर्मों को सुप्रतिष्ठित करने वाला धर्म। जैसे शालि-बीज से शालि।

(२) **आरम्मण-प्रत्यय**—आलंबन-भाव से उपकारक धर्म। जैसे **रूपायतन** से **चक्षुर्विज्ञान**।

(३) **अधिपति-प्रत्यय**—गुरु भाव से उपकारक धर्म। जब **छन्द** अग्र और ज्येष्ठ होकर चित्त प्रवृत्त होता है, तब **छन्द** अधिपति होता है। दूसरा चैतसिक नहीं।

(४) **अनन्तर-प्रत्यय**—अनन्तर भाव से उपकारक धर्म।

(५) **समनन्तर-प्रत्यय**—समनन्तर-भाव से उपकारक धर्म (ये दोनों एक हैं। नाम-भेद है। अर्थ-भेद नहीं)।

(६) **सहजात प्रत्यय**—सहोत्पाद भाव से उपकारक धर्म। जैसे प्रदीप प्रकाश का **सहजात-प्रत्यय** है।

[चार **अरूपी स्कन्ध** एक दूसरे के **सहजात प्रत्यय** हैं। इसी प्रकार **चारों महाभूत**। **चित्त-चैतसिक** धर्म **चित्तसमुत्थान रूप** के सहजात प्रत्यय हैं। **महाभूत उपादाय-रूप** के **सहजात प्रत्यय** हैं।]

(७) **अन्योन्य प्रत्यय**—उत्पाद उपस्तम्भ भाव से उपकारक धर्म; जैसे एक दूसरे के उपस्तम्भक त्रिदण्ड।

[चार **अरूपी धर्म अन्योन्य-प्रत्यय** हैं। चारों **महाभूत अन्योन्यप्रत्यय** हैं।]

(८) **निश्रय-प्रत्यय**—अधिष्ठान रूप से उपकारक धर्म। पृथ्वी वृक्ष का निश्रय-प्रत्यय है, पट चित्र का निश्रय-प्रत्यय है, चक्षुरायतन चक्षु विज्ञान-धातु का निश्रय-प्रत्यय है।

(९) **उपनिश्रय-प्रत्यय**—सबलकारण भाव से उपकारक धर्म। 'उप' का अर्थ 'भृशम्' है। यह तीन प्रकार का है—

(१) **आलंबनोपनिश्रय**—जिस आलम्बन को 'गुरु' कर चित्त-चैतसिक की उत्पत्ति होती है, वह आलंबन सबल होता है; जैसे दानादि को 'गुरु' समझता है।

(२) **अनन्तररूप-निश्रय**—**पश्चिम-चित्त** के उत्पादन में **पूर्व-चित्त** की **अनन्तररूप निश्रयता** है (**पूर्व-पूर्व कुशल-स्कन्ध पश्चिम-पश्चिम कुशलस्कन्धों** के **अनन्तररूप निश्रय** हैं।

(९) **प्रकृत्युपनिश्रय**—प्रकृति भाव से उपनिश्रय; श्रद्धा का निश्रय लेकर दान देना आदि।

(१०) **पूर्वजात प्रत्यय**—पूर्वतर उत्पन्न होकर वर्तमान भाव से उपकारक होने वाला धर्म; जैसे चक्षुरायतन से चक्षुर्विज्ञान।

(११) **पश्चातजात प्रत्यय**—पीछे उत्पन्न होकर पूर्वजात रूप धर्मों का उपस्तम्भक भाव से उपकारक धर्म। पीछे उत्पन्न होने वाले चित्त-चैतसिक पूर्वजात काय के पश्चात् जात (=पच्छाजात) प्रत्यय हैं।

(१२) **आसेवन-प्रत्यय**—अनन्तर उत्पन्न होने वाले धर्मों का प्रगुण भाव से या अभ्यासी होने से उपकारक धर्म।

(१३) **कर्म-प्रत्यय**—चेतना-संप्रयुक्त धर्मों का और तत्समुत्पन्न रूपों का चित्त प्रयोग संख्यात क्रिया-भाव से उपकारक धर्म।

(१४) **विपाक-प्रत्यय**—चार **विपाक-स्कन्ध** अरूपी धर्मों के **विपाक-प्रत्यय** हैं; जैसे निरुत्साह शान्त-भाव का विपाक-प्रत्यय है।

(१५) **आहार-प्रत्यय**—इस काय का कबलीकार आहार आहार-प्रत्यय है। अरूपी आहार संप्रयुक्त धर्मों के आहार-प्रत्यय हैं।

(१६) **इन्द्रिय-प्रत्यय**—स्त्री-पुरुषेन्द्रिय को वर्जित कर शेष २० इन्द्रिय अधिपति रूप से उपकारक हैं।

(१७) ध्यान-प्रत्यय—ध्यानवश उपकारक धर्म।

(१८) मार्ग-प्रत्यय—निर्माण के लिये उपकारक धर्म।

(१९) संप्रयुक्त-प्रत्यय—संप्रयुक्त भाव से उपकारक धर्म।

(२०) विप्रयुक्त-प्रत्यय—विप्रयुक्त भाव से उपकारक धर्म।

(२१) अस्ति-प्रत्यय—अस्ति-भाव से तादृश धर्म का उपस्तम्भन करने वाला प्रत्यय।

(२२) नास्ति-प्रत्यय—समनन्तर निरुद्ध अरूप-धर्म। अनन्तर उत्पद्यमान अरूप धर्मों को प्रवृत्ति का अवकाश देने वाला।

(२३) विगत-प्रत्यय—विगतभाव से उपकारक धर्म। समनन्तर विगत चित्त-चैतसिक प्रत्युत्पन्न चित्त-चैतसिकों का विगत प्रत्यय है।

(२४) अविगत-प्रत्यय—अस्ति-प्रत्यय धर्म ही अविगत भाव से उपकारक धर्म है।

१२. छधा नामं तु नामस्स पञ्चधा नामरूपिनं।
एकधा पुन रूपस्स रूपं नामस्स चेकधा॥
पञ्ञत्ति नामरूपानि नामस्स दुविधा द्वयं।
द्वयस्स नवधा चेति छब्बिधा पच्चया कथं॥

ये चौबीस प्रत्यय छः प्रकार से संगृहीत होते हैं—

(१) **नाम** (=अरूपी धर्मों) का **नाम** से छः प्रकार से संबंध है।
(२) **नाम** का **नाम-रूप** से पांच प्रकार से संबंध है।
(३) **नाम** का **रूप** से एक प्रकार से संबंध है।
(४) **रूप** का **नाम** से एक प्रकार से संबंध है।
(५) **प्रज्ञप्ति** का **नाम** से नौ प्रकार से संबंध है।
(६) **नाम-रूप** का **नाम** से नौ प्रकार से संबंध है।

ये छः प्रकार के संबंध किस तरह से हैं? उत्तर है—

(१३) **समनन्तर-निरुद्ध-चित्त-चैतसिक-धर्म प्रत्युत्पन्न-चित्त-चैतसिक-धर्मों के अनन्तर-प्रत्यय, समनन्तर-प्रत्यय, नत्थि-प्रत्यय, विगत प्रत्यय, पूर्व के जवन पीछे** के **जवनों के आसेवन-प्रत्यय** तथा **सहजात चित्त-चैतसिक धर्म** परस्पर **सम्प्रयुक्त-प्रत्यय** के रूप में प्रत्यय होते हैं। यह छः प्रकार से **नाम** के **नाम** का प्रत्यय होने का क्रम है।

(१४) छः हेतुओं में से कोई कोई यथासम्भव **सहजात चित्त-चैतसिकों** (=नामों) तथा **रूपों** का **हेतु प्रत्यय** के रूप में प्रत्यय होते हैं।

सात ध्यान अङ्गों में से कोई कोई यथासम्भव **सहजात चित्त-चैतसिकों** (=नामों) तथा **रूपों** के ध्यान-प्रत्यय के रूप में प्रत्यय होते हैं।

बारह मार्ग अङ्गों में से कोई कोई यथासम्भव **सहजात चित्त-चैतसिकों** (=नामों) तथा **रूपों** के **मार्ग-प्रत्यय** के रूप में प्रत्यय होते हैं।

सहजात-चेतना सहजात-नाम रूपों की तथा **नाना क्षणिक चेतना कर्मा-**

भिनिवर्त नाम रूप (=पटिसन्धि नाम तथा उपादिन्न रूप) की **कर्म-प्रत्यय** के रूप में प्रत्यय होती है?

विपाक स्कन्ध परस्पर सहजात रूपों के **विपाक-प्रत्यय** के रूप में प्रत्यय होते हैं।

(१५) पश्चात् उत्पन्न **चित्त-चैतसिक धर्म** पूर्वोत्पन्न इस शरीर के, नाम (=चित्त चैतसिक धर्म) रूप का प्रत्यय होते हैं, इसका जो एक प्रकार है, वे पश्चात जात प्रत्यय के हिसाब से प्रत्यय होते हैं।

(१६) चक्षु आदि छः वस्तुयें (=इन्द्रियां) सातों विज्ञान धातुओं का प्रत्यय होती हैं वैसे ही पाञ्च आलम्बन पांच विज्ञान-वीथि के। पूर्वोत्पन्न-प्रत्यय के हिसाब से एक ही तरह् 'रूप' 'नाम' का प्रत्यय होता है।

(१७) **प्रज्ञप्ति** 'नाम' का प्रत्यय **आरम्मण-प्रत्यय** के हिसाब से होती है, और **नामरूप** 'नाम' के प्रत्यय **उपनिश्रय-प्रत्यय** के हिसाब से होते हैं। **रूप, शब्द** आदि **आलम्बन** छः प्रकार के होते हैं।

(१८) **उपनिश्रय** तीन प्रकार का होता है, **आलम्बनउपनिश्रय, अनन्तरूप निश्रय, प्रकृति-उपनिश्रय।**

जहाँ आलम्बन की ही प्रधानता होती है वह **आलम्बन-उपनिश्रय** अनन्तर निरुद्ध चित्त-चैतसिक धर्म ही **अनन्तररूप निश्रय** हैं।

राग, द्वेष, मोह, मान, दृष्टि, प्रार्थना (=बलवती इच्छा) दस अकुशलकर्म पथ; पांच आनन्तरिय कर्म, श्रद्धा, शील, श्रुत, त्याग तथा प्रज्ञा, सुख, दुक्ख, पुद्गल, भोजन, ऋतु तथा शयनासन—इन सब यथायोग्य भीतर और बाहरी कुशलादि धर्मों का उपाश्रित उपनिश्रय, विपाकों का उपनिश्रय ही बहुधा प्रकृति-उपनिश्रय कहलाता है।

(२०) नाम-रूप नामरूपों का प्रत्यय **अधिपति-प्रत्यय सहजात-प्रत्यय, अञ्ञमञ्ञ-प्रत्यय, निश्रय-प्रत्यय, आहार-प्रत्यय, इन्द्रिय-प्रत्यय, विप्रयुक्त-प्रत्यय, अस्ति-प्रत्यय** तथा **अविगत-प्रत्यय** इन नौ प्रकार से यथायोग्य होता है।

(२१) जहाँ आलम्बन की प्रधानता है वहां नामों (=चित्त-चैतसिक धर्मों) का आरम्मण अधिपति प्रत्यय होता है।

चारों अधिपति जो सहजात अधिपति कहलाते हैं सहजात होने के कारण सहजात नामरूपों के प्रत्यय होते हैं।

इस प्रकार अधिपति प्रत्यय के दो भेद हैं।

(२२) सहजात प्रत्यय के तीन भेद हैं—

(१) **चित्त-चैतसिक धर्म** परस्पर **सहजात-रूपों** के **प्रत्यय** होते हैं।

(२) **महाभूत** परस्पर **उपादान-रूपों** के **प्रत्यय** होते हैं।

(३) **प्रतिसन्धिक्षण** में (हृदय-) वस्तु तथा चारों **विपाक-स्कन्ध** परस्पर **प्रत्यय** होते हैं।

इस तरह **सहजात प्रत्यय** के तीन प्रकार हैं।

(२३) **अन्यमन्य-प्रत्यय** भी तीन तरह का होता है—

(१) **चित्त-चैतसिक धर्म** परस्पर **प्रत्यय** होते हैं।

(२) **महाभूत** परस्पर **प्रत्यय** होते हैं।

(३) **प्रतिसन्धि-क्षण** में (हृदय-) वस्तु तथा चारों **विपाक-स्कन्ध** परस्पर प्रत्यय होते हैं।

(२४) **निश्रय-प्रत्यय** के भी तीन भेद हैं—

(१) **चित्तचैतसिक धर्म** परस्पर **सहजात-रूपों** के प्रत्यय होते हैं।

(२) **महाभूत** परस्पर **उपादान-रूपों** के प्रत्यय होते हैं।

(३) **छ वस्तुएँ** (इन्द्रियां) **सातों विज्ञान-धातुओं** का प्रत्यय होती हैं।

(२५) **आहार-प्रत्यय** दो प्रकार का होता है—

(१) कबळीकार(=कौर से खाया जाने वाला) आहार इस काय का प्रत्यय होता है।

(२) **अरूपी आहार**(=स्पर्श मनोसञ्चेतना तथा विज्ञान) **सहजात नाम** रूपों के **प्रत्यय** होते हैं।

(२६) **इन्द्रिय-प्रत्यय** तीन प्रकार का होता है—

(१) **पांच प्रसाद पांच विज्ञानों** के प्रत्यय होते हैं।

(२) (जीवित इन्द्रिय का एक भाग) **रूप जीवित-इन्द्रिय उपादिन्न** रूपों का प्रत्यय होती है।

(३) **अरूपी इन्द्रियां** (अरूप जीवित इन्द्रिय) मन इन्द्रियों आदि **सहजात नामरूपों** का प्रत्यय होती हैं।

(२७) **विप्रयुक्त प्रत्यय** के तीन भेद होते हैं—

(१) **प्रतिसन्धि क्षण** में **हृदय वस्तु** तथा **विपाक स्कन्ध** और **चित्त चैतसिक धर्म** रूप धर्मों के सहजात होने पर भी **विप्रयुक्तप्रत्यय** से ही प्रत्यय होते हैं।

(२) पश्चात उत्पन्न **चित्त चैतसिक धर्म** पूर्वोत्पन्न काय के पश्चात् जात-प्रत्यय होने पर भी **विप्रयुक्त प्रत्यय** से ही प्रत्यय होते हैं।

(३) पूर्वोत्पन्न छं वस्तुएँ (=इन्द्रियें) सात **विज्ञान-धातुओं** का **पुरे-जात प्रत्यय** होने पर भी **विप्रयुक्त** -प्रत्यय से प्रत्यय होती हैं।

२८. सहजातं पुरेजातं पच्छाजातञ्च सब्बथा।
कबळीकारो आहारो रूप जीवितमिच्चयं॥

अस्ति-प्रत्यय और अविगत-प्रत्यय के पांच पांच भेद होते हैं। अस्ति प्रत्यय तथा अविगत-प्रत्यय अर्थ की दृष्टि से एक ही हैं। वे पांच भेद हैं—

(१) **सहजात-अत्थि प्रत्यय,** (२) **पुरेजात अत्थि प्रत्यय,** (३) **पच्छाजात अत्थि प्रत्यय,** (४) **कबळीकार आहार अत्थि प्रत्यय,** (५) **रूप जीवित अत्थि प्रत्यय।**

रूपजीवित-इन्द्रिय उपादिन्न-रूप का **अत्थिपच्चय** से पच्चय होता है।

२९. सारे **प्रत्यय, आरम्मण-प्रत्यय, उपनिस्सय-प्रत्यय, कम्म-प्रत्यय, अस्ति-प्रत्यय**—इन चार **प्रत्ययों** के अन्तर्गत आ जाते हैं।

(३०) चित्त समुत्थानों के प्रवर्तित होने पर सर्वत्र उत्पन्न होने वाला रूप (=**सहजात रूप**) तथा प्रतिसन्धि क्षण में उत्पन्न होने वाला रूप (**उपादिन्नरूप**)—ये रूप के दो प्रकार हैं।

नाम-रूप-प्रज्ञप्तियाँ

३१. इति तेकालिका धम्मा कालमुत्ता च सम्भवा।
अज्झत्तञ्च बहिद्धा च सङ्खतासङ्खता तथा॥
पञ्ञत्ति नामरूपानं वसेन तिविधा ठिता।
पच्चया नाम पट्ठाने चतुवीसति सब्बथा॥

[ये भूत, भविष्यत् और वर्तमान युक्त धर्म हैं। **विज्ञप्ति** तथा **निर्वाण** काल-मुक्त हैं। चक्षु आदि भीतरी तथा रूप आदि बाहरी धर्म, संस्कृत (=पांच स्कन्ध) तथा असंस्कृत (=निर्वाण)—ये **प्रज्ञप्ति** (=असंस्कृत) **नाम** (=चित्त चैतसिक धर्म) तथा **रूप**—इस प्रकार से तीन भागों में विभक्त हैं। इन्हीं का पट्ठान में चौबीस-प्रत्ययों के रूप में विभाग हुआ है।]

३२. रूप धर्म **रूप-स्कन्ध** ही है। चित्त-चैतसिक कहे जाने वाले चारों (=वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान) **अरूपी स्कन्ध** तथा निर्वाण ये पांचों 'अरूप' तथा 'नाम' भी कहलाते हैं (निर्वाण को नाम के अन्तर्गत गिनना चिन्त्य ही है) शेष प्रज्ञप्तियां दो प्रकार की होती हैं—(१) प्रज्ञपित होने के कारण प्रज्ञप्ति तथा (२) प्रज्ञापन से प्रज्ञप्ति।

(क) प्रज्ञापित होने के कारण प्रज्ञप्ति

(३३) यह कैसे? उस उस (महा) भूत में जो परिवर्तन होता है उसका जो आकार-प्रकार होता है उस उसके अनुसार प्रज्ञापित होने वाले भूमि-पर्वत आदि। उन उन निर्माण-सामग्रियों को इकट्ठे करने से जो आकार-प्रकार पैदा होता है उस उस के अनुसार प्रज्ञापित घर, रथ, गाड़ी आदि। पांचों स्कन्धों के कारण प्रज्ञापित पुरुष-पुद्गल आदि। चन्द्रमा के प्रवर्तन आदि कारणों से प्रज्ञापित दिशा काल आदि। असंपृष्ठ-आकार के कारण प्रज्ञापित कुआं, गुफा आदि। उस उस (महा-) भूत को निमित्त

बनाकर भावना करने से उत्पन्न होने वाले (पृथ्वी-) कसिण आदि कसिण-निमित्त।

इस प्रकार के परमार्थ-रूप से अविद्यमान किन्तु "है" भासित होने वाले, चित्तुत्पत्तियों के आलम्बन उस उस कारण से उस उस रूप में नामांकित होते हैं, संज्ञाप्ति होते हैं तथा व्यवहार में आते हैं। प्रज्ञापित होने से 'प्रज्ञप्ति' कहलाते हैं। यह 'प्रज्ञप्ति' **प्रज्ञापित** होने से 'प्रज्ञप्ति' कहलाती है।

(ख) प्रज्ञापन से प्रज्ञप्ति

(३४) प्रज्ञापन से 'प्रज्ञप्ति' छः नामों से नामांकित है (१) **नाम**, (२) **नाम-कर्म**, (३) **नाम-धेय्य**, (४) **निरुत्ति**, (५) **व्यंजन**, (६) **अभिलाप**।

नाम=नाम कर्म=नाम-धेय्यं। निरुत्ति (=निरुक्ति) व्यंजन (=अर्थसाधक पद), अभिलाप (=भाषा, व्यवहार)।

इस प्रज्ञापन से प्रज्ञप्ति के छः प्रकार हैं—

(१) **विद्यमान प्रज्ञप्ति**, (२) **अविद्यमान-प्रज्ञप्ति**, (३) **विद्यमान से अविद्यमान प्रज्ञप्ति** (४) **अविद्यमान से विद्यमान प्रज्ञप्ति**, (५) **विद्यमान से विद्यमान प्रज्ञप्ति**, (६) **अविद्यमान से अविद्यमान प्रज्ञप्ति**।

(३५) (१) जब इस प्रज्ञप्ति से परमार्थ रूप से विद्यमान् रूप, वेदना आदि का प्रज्ञापन होता है तब यह **विद्यमान-प्रज्ञप्ति** कहलाती है।

(२) जब इस प्रज्ञप्ति से परमार्थ रूप से अविद्यमान् भूमि, पर्वत आदि का प्रज्ञापन होता है तब यह **अविद्यमान-प्रज्ञप्ति** कहलाती है।

दोनों के मेल से शेष चार प्रज्ञप्तियां इस प्रकार हैं—

(३) छः अभिज्ञावाला कहने से पुद्गल का बोध होता है। अभिज्ञा विद्यमान हैं। पुद्गल अविद्यमान है। इसलिये जिस प्रज्ञप्ति—षड्भिज्ञ—से परमार्थ रूप से विद्यमान, अभिज्ञा, किन्तु परमार्थ रूप से अविद्यमान् पुद्गल का प्रज्ञापन होता है वह **विद्यमान से अविद्यमान विज्ञप्ति कहलाती है**।

(४) 'स्त्री'-शब्द में स्त्री अविद्यमान है, शब्द विद्यमान है। इसलिये जिस प्रज्ञप्ति—स्त्री-शब्द से परमार्थ रूप से अविद्यमान् स्त्री, किन्तु परमार्थ रूप से विद्यमान् शब्द का प्रज्ञापन होता है वह **अविद्यमान् से विद्यमान् प्रज्ञप्ति** कहलाती है।

(५) 'चक्षु-विज्ञान' में चक्षु विद्यमान् है, विज्ञान विद्यमान् है। इसलिये जिस प्रज्ञप्ति—चक्षु-विज्ञान् से परमार्थ रूप से विद्यमान् चक्षु तथा परमार्थ रूप से विद्यमान् विज्ञान का प्रज्ञापन होता है, वह **विद्यमान् से विद्यमान प्रज्ञप्ति** कहलाती है।

(६) राज-पुत्र में राजा अविद्यमान् है, पुत्र अविद्यमान् है। इसलिये जिस प्रज्ञप्ति—राजपुत्र से परमार्थ रूप से अविद्यमान् राजा तथा परमार्थ रूप से ही अविद्यमान् पुत्र का प्रज्ञापन होता है, वह **अविद्यमान् से अविद्यमान प्रज्ञप्ति** कहलाती है।

३६. वचीघोसानुसारेन सोतविञ्ञाणवीथिया।
पवत्ताऽनन्तरूप्पन्न मनोद्वारस्स गोचरा।
अत्था यस्सानुसारेन विञ्ञायन्ति ततो परं।
सायं पञ्ञत्ति विञ्ञेय्या लोकसंकेतनिम्मिता॥

[सार्थक शब्द (=वचीघोष) के श्रोत्र विज्ञान वीथी में प्रवर्तित होने के अनन्तर जो मनोद्वार वीथी प्रवर्तित होती है, यह विज्ञप्ति उसका आलम्बन है। इसी के अनुसार बाद में मनोद्वार वीथी से अर्थों (=वस्तुओं) का ज्ञान होता है। प्रज्ञापन होता है। यह जानना चाहिये कि यह प्रज्ञप्ति लोक-सङ्केत से ही निर्मित हुई है।]

नवम परिच्छेद

कम्मट्ठान संग्रह विभाग

(१) समथविपस्सनानं भावनानं इतो परं।
कम्मट्ठानं पवक्खामि दुविधम्पि यथाक्कमं॥

समथ (=समाधि), **विपस्सना** (=प्रज्ञा) इन दोनों की भावना के क्रम को बताने वाले दोनों प्रकार का **शमथ कर्म-स्थान** तथा **विपश्यना-कर्म-स्थान** आगे वर्णित किया जा रहा है। **कर्म-स्थान** रूढ़ि शब्द है जिसका अर्थ है योगानुकूल-कर्म का साधन।

शमथ-संग्रह

(२) शमथ-संग्रह में ये सात शमथ कर्मस्थान संग्रह परिगणित हैं—(१) दस **कसिण** (२) दस **अशुभ** (—**भावना**), (३) दस **अनुस्मृतियाँ** (४) चार **अप्रमाण्यायें**, (५) एक **संज्ञा**, (६) एक **व्यवस्थान** (=ववत्थान), (७) चार **आरूप्य**।

(३) छः प्रकार का चरित-संग्रह परिगणित है—(१) **राग-चरित** **द्वेष (=दोस) चरित, मोह-चरित, श्रद्धा-चरित, बुद्धि-चरित** तथा **वितर्क चरित**।

(४) तीन प्रकार की भावना परिगणित है—
परिकम्मभावना, उपचारभावना तथा **अर्पणाभावना**।

(५) तीन प्रकार के ही निमित्त जानने चाहिये—
परिकम्म-निमित्त, उग्गह-निमित्त, पटिभाग-निमित्त।

कर्मस्थान-समुद्देश

(६) कैसे ? **पृथ्वी-कसिण, आपोकसिण, तेजो कसिण, वायो कसिण, नील कसिण, पीत कसिण, लोहित कसिण, ओदात कसिण, आकास कसिण,** तथा **आलोक-कसिण**—ये दस कसिण हैं।

(७) **उद्धुमातक, विनीलक, विपुब्बक, विच्छिद्दक, विक्खायितक, विक्खित्तक, हतविक्खित्तक लोहितक, पुळुवक** तथा **अट्ठिक**—ये दस अशुभ हैं।

(८) **बुद्धानुस्मृति, धर्मानुस्मृति, सङ्घानुस्मृति, सीलानुस्मृति, चागानुस्मृति, देवतानुस्मृति, उपसमानुस्मृति, मरणानुस्मृति, कायगतासति, आनापान सति**—ये दस अनुस्मृतियाँ हैं।

(९) **मैत्री, करुणा, मुदिता** तथा **उपेक्षा** ये चार **अप्रमाण्या** हैं। ये ही **ब्रह्मविहार** भी कहलाती हैं।

(१०) आहार में **प्रतिकूल संज्ञा**—यह एक **संज्ञा** है।

चतुधातु व्यवस्थान—एक व्यवस्थान है।

(११) **आकासानञ्चायतन, विञ्ञाणञ्चायतन, आकिञ्चञ्ञायतन** तथा **नेवसञ्ञानासञ्ञायतन** चार आरुप्य हैं।

ये कुल चालीस **कर्म-स्थान** होते हैं।

योग्यता-भेद

चरित्र (=स्वभाव) के हिसाब से लोगों के छः विभाग हैं। **राग-चरित, द्वेष-चरित, मोह-चरित;** इसी प्रकार **श्रद्धा-चरित, बुद्धि-चरित** तथा **मोह-चरित**—कुल छः चरित।

इन छः चरितों में से जो **राग-चरित** व्यक्ति होते हैं उनके लिये दस **अशुभ भावनायें** तथा **कोट्ठास भावना** नामक **कायगत स्मृति** अनुकूल पड़ती है।

जो **द्वेष-चरित** व्यक्ति होते हैं उनके लिये चार **अप्रमाण्य** (=**ब्रह्म-**विहार) तथा नील-पीत-लोहित ओदात चार **कसिण** अनुकूल पड़ते हैं।

जो **मोह-चरित** तथा **वितर्क-चरित** हैं, उनके लिये **आनापान स्मृति** अनुकूल पड़ती है।

जो **श्रद्धाचरित** हैं उनके लिये **बुद्धानुस्मृति, धर्मानुस्मृति, सङ्घानुस्मृति, सीलानुस्मृति, चागानुस्मृति** तथा **देवतानुस्मृति**—ये छः अनुस्मृतियाँ अनुकूल पड़ती हैं। जो **बुद्धि-चरित** हैं उनके लिये **मरणानुस्मृति, उपसमानुस्मृति,** एक **संज्ञा**, एक **चतुधातु व्यवस्थान**—ये चार **कर्मस्थान** अनुकूल पड़ते हैं।

शेष दस **कर्मस्थान** (=**पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश, आलोक, कसिण**+**चार आरुप्य**) सभी को अनुकूल पड़ते हैं।

तो भी कसिणों में जो अपेक्षाकृत बड़े **कसिण** हैं वे **मोह-चरित** को अनुकूल पड़ते हैं और जो क्षुद्र (=छोटे) हैं वे **वितर्क**-चरित को।

यही अनुकूलता-प्रतिकूलता भेद है।

भावना-भेद

(१३) जहाँ तक **भावना** (=अभ्यास) का सम्बन्ध है **परिकर्म**-भावना तो सभी कर्म-स्थानों को लेकर हो सकती है।

उपचार-भावना बुद्धानुस्मृति, धर्मानुस्मृति, संघानुस्मृति, सीलानुस्मृति, चागानुस्मृति, देवतानुस्मृति, उपसमानुस्मृति, तथा **मरणानुस्मृति** इन आठ अनुस्मृतियों तथा एक **संज्ञा** और एक **व्यवस्थान**—इन दस **कर्म-स्थानों** को लेकर हो सकती है। इन दस **कर्म-स्थानों** में **अर्पणा-भावना** के लिये स्थान नहीं है।

परिकर्म-भावना, उपचार-भावना और **अर्पणा-भावना** भी शेष तीसों कर्मस्थानों को लेकर हो सकती है।

(१०) फिर दस **कसिण** (९.६)और एक **आनापान सति** पाँचों **ध्यानों** की प्राप्ति में **निमित्त कारण** होते हैं। दस **अशुभ** (९.७) और एक **कायगत स्मृति प्रथम ध्यान** की प्राप्ति में निमित्त कारण होती है। **मैत्री, करुणा** तथा **मुदिता**—ये तीनों कर्मस्थान **चतुर्थ-ध्यान** तक की प्राप्ति में निमित्त कारण

होते हैं। **उपेक्षा** कर्मस्थान **पंचम ध्यान** तक की प्राप्ति में निमित्त कारण होता है। इस प्रकार ये छब्बीस **कर्म-स्थान रूपावचर** ध्यानों की प्राप्ति में ही निमित्त कारण हैं।

चारों **आरुप्य** (=आकासानञ्चायतनादि ९.११) चारों **आरुप्य ध्यानों** की प्राप्ति में निमित्त कारण होते हैं।

निमित्त-भेद

(१५) निमित्तों के विषय में **परिकर्म-निमित्त** तथा **उग्गह-निमित्त** सर्वत्र ही यथायोग्य एक पर्य्याय से सिद्ध होते हैं।

पटिभाग-निमित्त तो दस **कसिणों** में, दस **अशुभों** में, **कोट्ठास-भावना,** नामक **कायगतास्मृति** में तथा **आनापान स्मृति**—इन **कर्मस्थानों** में ही सिद्ध होते हैं।

पटिभाग निमित्त के ही होने से उपचार-समाधि तथा **अर्पणा-समाधि** का प्रवर्तन होता है।

(१६) कैसे ? योगाभ्यासी जब पृथ्वी मण्डल आदि को ध्यान का विषय बनाकर निमित्त ग्रहण करने का प्रयास करता है तो उसका वह आलम्बन ही **परिकर्म निमित्त** कहलाता है। उसकी वह भावना भी **परिकर्म-भावना** कहलाती है।

(१७) जब वह निमित्त चक्षु द्वारा सम्यक् गृहीत होता है, आँख से देखते देखते ही मनोद्वार के सामने आ जाता है, तब उसी आलम्बन को **उग्गह निमित्त** कहते हैं। वह भावना समाधि-मार्गी होती है।

(१८) इस प्रकार एकाग्र हुए और इसके बाद भी उस **उग्गह-निमित्त** को लेकर **परिकर्म समाधि** द्वारा योगाभ्यास में लगा हुआ चित्त जब **कसिण दोष** (=वस्तु धर्म) विमुक्त **पटिभाग निमित्त** भावना-मय-आलम्बन बन कर चित्त में व्याप्त होता है, समर्पित होता है, उस समय वह **पटिभाग निमित्त** उत्पन्न होता है। इसके बाद से बाधा रहित **कामावचर समाधि** कहलाने वाली **उपचार-भावना** उत्पन्न होती है।

(१९) इससे आगे उसी पटिभाग निमित्त की उपचार समाधि द्वारा भावना (=अभ्यास) करने से रूपावचर-प्रथम ध्यान नामक **अपर्णा** को प्राप्त होता है। इससे आगे उसी प्रथम ध्यान को आवर्जन, समावर्जन, अधिष्ठान, उट्ठान तथा प्रत्यवेक्षणा द्वारा अपने अधिकार में करके वितर्क आदि असूक्ष्म अङ्गों को छोड़कर विचार आदि सूक्ष्म अङ्गोंकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न करते हुए यथाक्रम द्वितीय ध्यान आदि को यथायोग्य प्राप्त करता है। इस प्रकार **पृथ्वी कसिण** आदि बाइस कर्मस्थानों में **प्रटिभाग निमित्त** प्राप्त होता है।

(२०) शेष अट्ठारह **कर्मस्थानों** में **मैत्री, करुणा, मुदिता** तथा **उपेक्षा** ये चार **ब्रह्मविहार सत्व-प्रज्ञप्ति** में प्रवर्तित होते हैं।

अप्रमाण प्राणी इन चार **ब्रह्मविहारों** के **आलम्बन** होते हैं। वे **रूप** आदि के समान साकार आलम्बन नहीं होते; वे केवल **प्रज्ञप्तिरूप** में आलम्बन होते हैं।

(२१) **आकाश** कसिण को छोड़कर शेष कसिणों में से जिस किसी कसिण को उघाड़कर प्राप्त आकाश की अनन्त रूप भावना (=**परिकर्म**) करने से प्रथम आरूप्य की प्राप्ति होती है।

उसी **प्रथम-आरूप** विज्ञान की अनन्त रूप भावना करने से **द्वितीय आरूप्य** की प्राप्ति होती है।

प्रथमारूप तथा विज्ञान के अभाव को लेकर 'कुछ नहीं है' की भावना करने से **तृतीय आरूप्य** की प्राप्ति होती है।

तृतीय आरूप को लेकर भी 'यह शान्त है, यह प्रणीत है', ऐसी भावना करने से **चतुर्थ आरूप्य** की प्राप्ति होती है।

(२२) शेष **बुद्धानुस्मृति** आदि आठ (**कर्मस्थानों**) तथा एक **सञ्ञा** और एक **व्यवस्थान**, कुल दस **कर्मस्थानों** में बुद्धगुण आदि को ही एकाग्रता का आलम्बन बना, परिकर्म (=अभ्यास) कर, उस निमित्त के अच्छी तरह स्पष्ट हो जाने पर, वही **उग्गह-निमित्त** हो जाता है। इन दस कर्मस्थानों से **उपचार-भावना** ही सिद्ध होती है, **अर्पणा** नहीं।

पांच अभिञ्ञा

रूपावचर पंचम-ध्यान के पादक पंचम ध्यान तथा अभिञ्ञा-पंचम-ध्यान दो भेद किये गये हैं। अभिञ्ञा को लेकर जो रूपावचर पञ्चम ध्यान प्रवर्तित होता है उस अभिञ्ञा पादक पञ्चम ध्यान से उठकर जब योगी जिस जिस बात (एक से अनेक होने आदि ऋद्धियों) का संकल्प कर अभ्यास करता है तो वह रूप आदि आलम्बनों में यथायोग्य अर्पणा को प्राप्त होता है।

(२४) अभिञ्ञा पाँच हैं—

इद्धिविधं, दिब्बसोतं, परचित्तविजाननं।
पुब्बेनिवासानुस्सति दिब्बचक्खू ति पञ्चधा॥

(१) अनेक प्रकार की ऋद्धियाँ, (२) दिव्य श्रोत्र, (३) दूसरे के चित्त की बात जान लेना, (४) पूर्व जन्म अनुस्मरण, तथा (५) दिव्य-चक्षु।

यही गोचर (=उपचार अर्पणा के आलम्बन के विषय)-भेद हुए।

शमथ कर्मस्थान-क्रम समाप्त।

विपश्यना कर्मस्थान

(२५) विपश्यना कर्मस्थान के संग्रहों में सात प्रकार का तो विशुद्धि-संग्रह है—

(१) **शील विशुद्धि**, (२) **चित्त विशुद्धि**, (३) **दृष्टि विशुद्धि**, (४) **कङ्खावितरण विशुद्धि**, (५) **मग्गामग्ग ज्ञान दर्शन विशुद्धि**, (६) **प्रटिपदाज्ञान दर्शन विशुद्धि**, तथा **ज्ञान दर्शन विशुद्धि**।

(२६) **अनित्य लक्षण**, **दुक्ख लक्षण** तथा **अनात्म लक्षण**—ये तीन लक्षण हैं।

(२७) **अनित्य-अनुपश्यना**, **दुक्खानुपश्यना**, **अनत्तानुपश्यना**—ये तीन अनुपश्यना हैं।

(२८) **सम्मसनज्ञानं, उदयव्ययज्ञानं, भङ्गज्ञानं, भय-ज्ञानं, आदीनव ज्ञानं, निब्बिदा ज्ञानं, मुञ्चितुकम्यता ज्ञानं, पटिसङ्खाज्ञानं, सङ्खारुपेक्खा-ज्ञानं** तथा **अनुलोम ज्ञानं**—ये दस **विपश्यना ज्ञान** हैं।

(२९) **सुञ्ञतो विमोक्ख, अनिमित्तो विमोक्ख** तथा **अप्पणिहितो विमोक्ख**—ये तीन **विमोक्ष** हैं।

सुञ्ञतानुपश्यना, अनिमित्तानुपश्यना, अप्पणिहितानुनेपश्यना—ये तीन **विमोक्ष-मुख** हैं।

(३०) कैसे ? **प्रातिमोक्षसंवरशीलं, इन्द्रियसंवरशीलं, आजीव परिशुद्धिशीलं, प्रत्ययसन्निसित शीलं**— ये जो चार प्रकार की शील की विशुद्धि है, यही शील-**विशुद्धि** नाम है।

(३१) **उपचार-समाधि** तथा **अर्पणा-समाधि**—यह दो प्रकार की समाधि **चित्त-विशुद्धि** कहलाती है।

(३२) लक्षण, रस, पच्चुट्ठान तथा पदट्ठान के क्रम से **नाम** (=चित्त-चैतसिक धर्मो) तथा **रूप** का परिग्रहण—यह **दृष्टि-विशुद्धि** कहलाती है।

(३३) उन **नामरूपों** का ही **प्रत्यय-परिग्रहण कङ्खावितरण शुद्धि** कहलाती है। अविद्या आदि नाम-रूपों के प्रत्यय हैं।

(३४) इससे आगे उक्त क्रम से सप्रत्यय-परिगृहीत **कामावचर, रूपावचर** तथा **अरूपावचर** सम्बन्धी संस्कारों को, जो भूत-भविष्य तथा वर्तमान भेद से भिन्न नहीं हैं, **पञ्चस्कन्ध,** छः द्वार आदि क्रम से पृथक पृथक संग्रहों के द्वारा संक्षिप्त करके, जो क्षयार्थ में अनित्य, दुक्खार्थ में भय, तथा असारार्थ में अनात्म मान कर अद्धव (=मार्ग) के रूप में, चित्त (-सन्तति) के रूप में, क्षण के रूप में, सम्मसन ज्ञान द्वारा लक्षण-त्रय विचार करता है तथा जो उन्हीं का प्रत्यय रूप से, क्षण-रूप से, उदय-व्यय ज्ञान से उदय-व्यय का विचार करता है, उसका—

ओभासो पीति पस्सद्धि अधिमोक्खो च पग्गहो।
सुखं ञाणमुपट्ठानमुपेक्खा च निकन्ति च॥

[ओभास, प्रीति, प्रश्रब्धि, अधिमोक्ष, प्रग्रह (=वीर्य्य), सुख, ज्ञान, उपस्थान, उपेक्षा तथा निकन्ति (=तृष्णा) ।]

ओभास, प्रीति आदि जो विपश्यना के उपक्लेश होने से उसके बाधक कारण हैं उनका ग्रहण कर, मार्ग-अमार्ग के लक्षणों का जो स्पष्ट ज्ञान है, वही **मार्गामार्ग ज्ञान दर्शन विशुद्धि** कहलाता है।

(३५) इस प्रकार उस बाधा से मुक्त होकर उस उदय-व्यय ज्ञान से लेकर अनुलोम ज्ञान तक त्रिलक्षण (=अनित्य, दुःख तथा अनात्म) की भावना करते हुए विपश्यना क्रम में लगे हुए योगी को जो नौ (उदय व्यय ज्ञानादि (९–२८) विपश्यना ज्ञान प्राप्त होते हैं वे ही **प्रतिपदा ज्ञान दर्शन विशुद्धि** कहलाते हैं।

(३६) जो इस प्रकार योगाभ्यास में लगा होता है उस की **विपश्यना-भावना** सिद्ध हो जाने पर **'अर्पणा'** की उत्पत्ति के समय **भवङ्ग** में लहर उठकर (=वोच्छिन्दित्वा) उत्पन्न **मनोद्वार** के अनन्तर दो तीन **विपश्यना-चित्त** जिस किसी अनित्य आदि लक्षण को लेकर **परिकर्म** (**-निमित्त**) तथा **उपचार**(**-निमित्त**) के अनुलोम प्रवर्तित होते हैं। जो अर्पणा प्राप्त हो गई (=शिखर - प्राप्त हो गई) वह अनुलोम, संस्कारों की उपेक्षा करने वाली तथा **उट्ठानगामिनी विपश्यना** कहलाती है।

इसके बाद **गोत्र-भूचित्त** निर्वाण को आलम्बन करके, पृथकजन (= सामान्य अज्ञानी जन) के गोत्र का अतिक्रमण कर **आर्य-गोत्र** को प्राप्त हो प्रवर्तित होता है।

उसके बाद ही **दुक्ख-सत्य** का ज्ञान प्राप्त करते हुए, **समुदय-सत्य** का त्याग करते हुए, **निरोध सत्य** का साक्षात करते हुए, **मार्ग-सत्य** भावना-रूप से अर्पणा वीथि में उतरता है।

उसके बाद दो तीन **फल-चित्त** प्रवर्तित होकर **भवङ्गपात** ही हो जाता है।

फिर **भवङ्ग** में लहर उठकर (=वोच्छिन्दित्वा) **प्रत्यवेक्षण ज्ञान** प्रवर्तित होते हैं।

मग्गं फलञ्च निब्बानं पच्चवेक्खति पण्डितो।
हीने किलेसे सेसे च पच्चवेक्खति वा न वा॥
छब्बिसुद्धिक्कमेनेवं भावेतब्बो चतुब्बिधो।
ञाणदस्सनविसुद्धि नाम मग्गो पवुच्चति॥

[पण्डित स्रोतापत्ति-मार्ग, स्रोतापत्ति-फल आदि तथा निर्वाण की प्रत्यवेक्षा करता है। क्लेशों (=चित्त मलों) के दूर होने पर वह शेष क्लेशों की प्रत्यवेक्षा करता है और नहीं भी करता है। इस प्रकार **शीलविशुद्धि** से आरम्भ करके **पटिपदाज्ञान दर्शन विशुद्धि** तक क्रमशः चतुर्विध (**स्रोतापत्ति, सकृदागामि, अनागामि** तथा **अर्हत**) मार्ग की भावना करनी चाहिये। वह मार्ग **ज्ञान दर्शन विशुद्धि मार्ग** कहलाता है।]

विमोक्ष-भेद

३७. **अनुपश्यनाओं** में जो **अनात्मानुपश्यना** है वह **आत्माभिनिवेश** से मुक्त कर देती है, जो **शून्यतानुपश्यना** है वह **विमोक्ष** का कारण होती है।

अनित्यानुपश्यना विपर्य्यास निमित्त से मुक्त करती है। **अनिमित्तानुपश्यना** विमोक्ष का कारण है।

दुःखानुपश्यना तृष्णा-प्रणिधि से मुक्त करती है। **अप्रणिहित अनुपश्यना** विमोक्ष का कारण होती है।

इसलिये यदि उत्थानगामीनि विपश्यना अनात्म-भाव की विपश्यना करती है, तो वह मार्ग शून्यता-मोक्ष-मार्ग होता है।

यदि **अनित्य भावना** की **विपश्यना** की जाती है तो **अनित्य-मोक्ष-मार्ग** होता है।

यदि **दुक्ख-भावना** की **विपश्यना** की जाती है तो **अप्रणिहित-विमोक्ष** नाम का मार्ग होता है।

इस तरह विपश्यना के हिसाब से मार्ग के तीन नामकरण हो जाते हैं।

इसी प्रकार मार्ग वीथि में फल के भी मार्ग रूप से आ जाने के कारण उसके भी शून्यता-विमोक्ष आदि तीन नाम हो जाते हैं।

(३८) फल समापत्ति वीथि में उक्त क्रमानुसार विपश्यना का अभ्यास करते हुए अपने ही फल के उत्पन्न होने पर भी विपश्यना के ही रूप से आगमन होने के कारण शून्यता-विमोक्ष आदि तीन नाम हो जाते हैं।

आलम्बन तथा स्वकीय रस के रूप से सर्वत्र सबके तीन ही नाम बराबर होते हैं।

पुद्गल भेद

(३९) जो **स्रोतापत्ति मार्ग** की भावना करके दृष्टि (=**सक्काय दृष्टि**), **विचिकिच्छा** (तथा **शीलव्रत परामर्श**) का प्रहाण करके, अपाय-उत्पत्ति की सम्भावना समाप्त कर देता है और जिसका देव-लोक वा मनुष्य लोक में अधिक से अधिक सात बार जन्म होता है, वह **स्रोतापन्न** कहलाता है।

(४०) **सकृदागामी मार्ग** की भावना कर, राग, द्वेष, मोह को क्षीण करने वाला **सकृदागामी** कहलाता है। एक ही बार इस लोक में आने वाला।

(४१) **अनागामी मार्ग** की भावना कर कामराग तथा व्यापाद का सर्वथा नाश करने वाला **अनागामी** कहलाता है, फिर इस लोक में नहीं आने वाला; वह केवल **शुद्धावास देवलोक** में ही जन्म ग्रहण कर सकता है।

(४२) **अर्हत्व मार्ग** की भावना कर क्लेशों का सर्वथा नाश करने वाला 'अर्हत' कहलाता है, क्षीणास्रव, अग्र-दक्षिणेय्य।

समापत्ति-भेद

(४२) सभी आर्य-पुद्गलों के लिये अपने अपने 'फल' के अनुसार फलों की समापत्ति (=प्राप्ति) समान रूप से ही होती है। किन्तु **निरोध-समापत्ति अनागामियों** तथा **अर्हतों** के लिये ही विशेष है। वह वीथि असाधारण है।

(४४) निरोध समापत्ति में क्रमशः प्रथम ध्यान आदि **महग्गत समापत्ति** को समापन्न होकर, उस समय के संस्कार धर्मों का उसी उसी स्थान पर विपश्यना कर **आकिंचायतन** तक जाकर, इसके बाद **अधिय्यट्ठेसङ्ग पटिमानन सत्थुप्पकोसन** तथा **जीवित दान परिच्छेदावज्जन** पूर्व कृत्यों को करके **नेव सञ्ञानासञ्ञायतन** को प्राप्त होता है। दो अर्पणा-जवनों के बाद उसकी **चित्त-सन्तति** का उच्छेद होता है। उसके बाद **निरोध समापति।**

(४५) **निरोध-समापत्ति** से उठने के समय अनागामियों का **अनागामि-फल-चित्त** तथा अर्हतों को **अर्हत फल चित्त** एक ही बार प्रवर्तित होकर **भवङ्ग-पात** होता है। उसके बाद **प्रत्यवेक्षा ज्ञान** प्रवर्तित होता है।

यह समापत्ति-भेद हुआ।

विपश्यना कर्म-स्थान क्रम भी समाप्त है।

४६. भावेतब्बं पनिच्चेवं भावनाद्वयमुत्तमं।
पटिपत्तिरसस्सादं पत्थयन्तेन सासने॥

[जो कोई इस (बुद्ध) शासन में धर्माचरण के रस के स्वाद की कामना करता हो उसे इस **शमथ कर्म-स्थान** तथा **विपश्यना-कर्मस्थान** इन दोनों कर्मस्थानों का अभ्यास करना चाहिये।]